बी.कॉम./बी.ए. (प्रोग्राम) तृतीय वर्ष अर्थशास्त्र

प्रश्नपत्र : XIV / अनुशासन पाठ्यक्रम

भारत में आर्थिक विकास और नीति

अध्ययन सामग्री : 2 (1–6)



मुक्त शिक्षा विद्यालय
(मुक्त शिक्षा परिसर)
दिल्ली विश्वविद्यालय

अर्थशास्त्र – विभाग

सम्पादक : जे. खूंटिया

स्नातक पाठ्यक्रम

भारत में आर्थिक विकास और नीति

अनुक्रम

पाठ 1 : कृषि भूमिका, वृद्धि, उत्पादन व उत्पादकता

पाठ 2 : भूमि सुधार

पाठ 3 : हरित क्रांति

पाठ 4 : भारत में कृषि विपणन और कीमत नीति

पाठ 5 : भारत में कृषि वित्त

पाठ 6 : भारत में कृषि मजदूर

सम्पादकः

जे. खूंटिया

मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

पाठ 1

कृषि भूमिका, वद्धि, उत्पादन व उत्पादकता

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप समझेंगे

- भारत में कृषि की भूमिका एवं महत्त्व
- कृषि वद्धि की प्रवत्ति
- कृषि उत्पादन व उत्पादकता की प्रवत्ति
- कम कृषि उत्पादकता के कारण
- भारत में कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किये गऐ उपाय

प्रस्तावनाः

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। कृषि, भारत में सबसे बड़ा रोजगार प्रदान करने वाला क्षेत्र है तथा साथ-ही-साथ अधिकतर व्यक्तियों का जीविका का प्रदान करने वाला साधन भी है। यद्यपि 1950 के बाद कृषि का कुल घरेलू उत्पाद में भाग लगातार कम हुआ है, लेकिन 50 प्रतिशत से अधिक कार्यकारी व्यक्ति इसमें प्रत्यक्ष रुप से रोजगार पाऐ हुये हैं। इसके अलावा जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि पर आधारित उद्योगों में और कृषि उत्पादों के व्यापार में रोजगार-गत है। कृषि बहुत से औद्योगिक उत्पादों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती है तथा साथ-साथ ही औद्योगिक उत्पादों के लिए माँग की जनक भी है। इस सबके बावजूद, एक लंबे समय तक कृषि में वद्धि, गैर-कृषि क्षेत्र में वद्धि से कम रही है।

भारत में कृषि की भूमिका एवं महत्त्व

भारतीय अर्थव्यवस्था में, रोजगार, राष्ट्रीय-आय व अन्तर्राष्ट्रीय-व्यापार के आयाम के अन्तर्गत, कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

A. कृषि, रोजगार का सबसे बड़ा प्रदाता : कृषि भारत में आज भी रोजगार व जीविका का सबसे बड़ा साधन है। 90 के दशक में, कृषि व इसकी गतिविधियों में लगभग 70% कार्यकारी जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से कृषि में रोजगार पाऐ हुऐ थे जो 2007 में 57 प्रतिशत तथा वर्ष 2006-07 यह घटकर 52 प्रतिशत रह गया है। इस प्रत्यक्ष रोजगार के अलावा, यह क्षेत्र, कृषि आधारित उद्योगों जैसे – खाद्य तेल, खादी व चीनी आदि, में रोजगार के अवसर प्रदान करता है। कृषि क्षेत्र अप्रत्यक्ष रूप से भंडारण, यातायात, ग्रामीण बैंकिग, कृषि-निर्यात आदि गतिविधियों में भी रोजगार के अवसर प्रदान कराता है।

B. कृषि का राष्ट्रीय आय में योगदान : 1950 के दशक के पूर्वार्द्ध में भारत की राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत कृषि क्षेत्र से आता था। 1995 में यह घटकर 25 प्रतिशत रह गया। योजना काल के शुरुआती दौर में कृषि का राष्ट्रीय आय में योगदान गैर कृषि क्षेत्र में कम विकास को प्रदर्शित करता है।

Table 1 : Share of Agriculture Output in India's GDP

Year	1950-51	1965	1976	1985	1991	1997	2007
% Share	52.2	43.6	37.4	32.8	28.3	24.4	18.5

Source : various issues of economic survey.

2006 - 07 में कृषि का राष्ट्रीय आय में योगदान कम होकर 18.5% रह गया है। कृषि का राष्ट्रीय आय में कम होता योगदान, वास्तव में विकास का द्योतक है। विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत, विकास के साथ कृषि का योगदान, राष्ट्रीय आय में कम होता जाता है। ठीक ऐसा ही भारत में हो रहा है।

C. कृषि, उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती है : कृषि, बहुत से उद्योगों जैसे कपड़ा उद्योग, जूट, चीनी आदि के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती है। खाद्य प्रसंस्करण, ग्रामीण व कुटीर उद्योग और हैन्डलूम उद्योग आदि अन्य उद्योग भी कच्चे व आगत के लिए कृषि पर निर्भर हैं।

D. कृषि, बढ़ती हुयी जनसंख्या के लिए भोजन उपलब्ध कराती है : भारत में कृषि, बढ़ती हुई जनसंख्या की लगभग समस्त भोजन की माँग की पूर्ति करती है।

भारत के सम्पूर्ण आयात में, खाद्य आयात हमेशा ही कम रहा है तथा यह लगातार कम हो रहा है। कृषि क्षेत्र में वद्धि यद्यपि गैर-कृषि से कम रही है परन्तु यह जनसंख्या में होने वाली वद्धि से ज्यादा रही है। 1950-51 से 2006-07 के मध्य

भारत की जनसंख्या वद्धि दर औसतन 2.1 प्रतिशत रही है जबकि कृषि क्षेत्र की औसत वद्धि दर 2.5 प्रतिशत रही है। इसके परिणामस्वरूप भारत खाद्य आपूर्ति में आत्मनिर्भर बन गया है तथा कुछ एक मौकों को छोड़कर 1976-77 और 2005-06 के मध्य मुश्किल से किसी खाद्य पदार्थों का आयात हुआ है।

E. कृषि, औद्योगिक वस्तुओं के लिए बाजार उपलब्ध कराता है : ग्रामीण भारत में अधिकतर जनसंख्या कृषि पर निर्भर रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक पदार्थों के लिए मांग, कृषि विकास पर निर्भर करती है इस तरह कृषि, औद्योगिक वस्तुओं के बाजार उपलब्ध कराती है।

F. कृषि का अन्तर्राष्ट्रीय-व्यापार में योगदान : यद्यपि कृषि का योगदान कुल निर्यात के भाग में लगातार कम हो रहा है, फिर भी 2006-07 में कृषि वस्तुओं तथा कृषि आधारित वस्तुओं का निर्यात में योगदान 10.35 प्रतिशत था। यह भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की गति को निरुपित करती है। कृषि का कुल आयातों में भाग 4-6% है। इस प्रकार कृषि का अन्तर्राष्ट्रीय-व्यापार में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

G. कृषि आर्थिक अधःसंरचना को प्रोत्साहित करती है : कृषि क्षेत्र भंडारण व्यवस्था, मार्केटिंग तथा खाद्य प्रसंस्करण के रूप में आर्थिक अधःसंरचना को बनाये रखने में सहायक है। कृषि क्षेत्र देश की यातायात व्यवस्था, ग्रामीण बैंकिंग की सबसे बड़ी उपभोगकर्ता है।

स्वयं मूल्यांकन के लिए प्रश्न

→ कृषि की आय व रोजगार में योगदान की व्याख्या कीजिए।

→ कृषि की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में स्थिति को निरुपित कीजिए।

→ कृषि व उद्योग के बीच अन्तर्सम्बन्ध को समझाइए।

भारत में कृषि वद्धि की प्रवत्ति : कृषि देश की GDP में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है लेकिन स्वयं अर्थव्यवस्था में सबसे धीमी वद्धि वाला क्षेत्र है। हरित क्रान्ति के काल से पहले i.e. आजादी से लेकर 1964-65, कृषि क्षेत्र की वार्षिक औसत वद्धि 2.7 प्रतिशत थी। इस काल में भूमि सुधार व सिंचाई साधनों की दिशा में पर्याप्त विकास हुआ है। हरित क्रान्ति के समय में 1961-1981 तक, कृषि क्षेत्र में औसत वद्धि 3.0 प्रतिशत तथा 1980-81 से 1990-91 के मध्य 3.5 प्रतिशत रही है। हरित क्रान्ति के समय में कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीकी का प्रयोग होने लगा।

1992-93 के दौरान कृषि क्षेत्र वद्धि 2.9 प्रतिशत रही जो 1997-98 - 2006-07 के मध्य कम होकर 2.5 प्रतिशत हो गयी। कृषि वद्धि में कमी के कमी निम्नलिखित कारण हैं :

a) 1990 के दशक तक अधिक उत्पादकता वाले बीजों की

b) कृषि-क्षेत्र में सरकारी खर्चे की कमी तथा भूमि की गुणवत्ता में कमी जिसकी वजह से आधुनिक आगतों की सीमान्त उत्पादकता कम हो गयी।

Table 2 : Average GDP growth rates of agriculture sector at 1999-2000 price (Percent)

Period	Years	Total economy	Agriculture & allied	Non-agriculture
Pre-Green Revolution	1951-52 to 1967-68	3.7	2.5	4.9
Green Revolution	1968-69 to 1980-81	3.5	2.4	4.4
Technology Dissemination	1981-82-1990-91	5.4	3.5	6.4
Early Reforms	1991-92 to 1996-97	5.7	3.7	6.6
Ninth and Tenth Plan	1997-98 to 2006-07 2005-06 to 2006-07	6.6 9.5	2.5 4.8	7.9 10.7

Source : Economic Survey 2007-2008.

भारत में कृषि उत्पादन व उत्पादकता : कृषि उत्पाद, खाद्य फसलों व अखाद्य फसलों से प्राप्त होने वाले कुल उत्पादन के बराबर होता है। खाद्य पदार्थों में चावल, गेहूँ, बाजरा, दाल आदि सम्मिलित हैं। अखाद्य पदार्थों में कपास, जूट इत्यादि सम्मिलित हैं। भारत में कुल बुआई क्षेत्र के 314 भाग में खाद्य फसलें होती हैं।

कृषि उत्पाद की प्रवत्ति : आर्थिक योजना के शुरुआती समय में, खाद्य की आपूर्ति, भारत में बड़ी समस्या थी। 1950-51 में कुल खाद्य उत्पादन 51 मिलिअन टन था जो 2006-07 में बढ़कर 212 मिलिअन टन हो गया और आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08 के अनुसार, यह 219.3 मिलियन टन की आशा है।

कृषि उत्पादन में वद्धि दर की प्रवत्ति स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि हरित क्रान्ति के बाद कुल खाद्यान उत्पादन में आशातीत वद्धि हुई है (मध्य 60's से 1990)। 1964-65 - 1980-81 यद्यपि कृषि योग्य क्षेत्र में कोई ज्यादा वद्धि नहीं हुई परन्तु इस दौरान कृषि उत्पादन में वद्धि हुई है जो कि मुख्यतः कृषि में तकनीकी प्रगति के कारण देखने को मिलती है। अर्थात इस दौरान कृषि उत्पादकता में वद्धि हुई थी। आँकड़े (1990) बताते हैं कि इस दौरान नीतिगत परिवर्तन हुये जिनमें मख्यतः (i) ज्यादा उत्पादकता वाले बीजों का प्रयोग, (ii) कृषि में अनुसंधान को बढ़ावा, (iii) रासायनिक उर्वरक कीटनाशक जैसे कृषि आगतों की पूर्ति में वद्धि, (iv) सिंचाई सुविधाओं का विकास, (v) मुख्य कृषि उत्पादों के लिए न्यूनतम सहायक कीमतें तथा सहकारी वितरण प्रणाली और (vi) कृषि वित्त की व्यवस्था आदि सम्मिलित थे। इस दौरान कृषि उत्पादों की मार्केटिंग के लिए भौतिक व संस्थागत अधःसंरचना की व्यवस्था भी की गई थी।

1990 के बाद का समय, मुख्यतः आर्थिक सुधारों की शुरुआत के बाद का समय कृषि क्षेत्र के लिए बहुत उत्साहवर्धक नहीं रहा है। वास्तव में इस काल में कृषि का प्रदर्शन, आजादी से लेकर 1990 तक के प्रदर्शन की तुलना में बुरा/पिछड़ा हुआ रहा है। यह खराब प्रदर्शन और भी ज्यादा तीव्र हो जाता है यदि हम 1990 के दशक के कृषि विकास की तुलना 80 के दशक की कृषि वद्धि से करें। 1980 के दशक कृषि उत्पादन में वद्धि की दर औसतन 3.19 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी जो 1990 के दशक में घटकर औसतन 1.58 रह गयी है। 1991-2007 के मध्य खाद्यान उत्पादन की वद्धि दर कम होकर 1.2 प्रतिशत रह गयी है जो जनसंख्या में होने वाली 1.9 से कम है। इसके वजह से भविष्य में तीव्र खाद्यान संकट उत्पन्न होने की आशंका है। सन् 1991, आर्थिक सुधारों की शुरुआत के बाद, जिसमें अर्थव्यवस्था का उदारीकरण हुआ है तथा सरकारी हस्तक्षेप भी लगातार कम हुआ, कृषि का प्रदर्शन बहुत ज्यादा सन्तोषजनक नहीं रहा है। यद्यपि आर्थिक सुधार की नीतियां प्रत्यक्षः रूप से कृषि को प्रभावित करने वाली नहीं थी। फिर भी कृषि क्षेत्र पर आर्थिक सुधारों का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के दौरान मुद्रा का अवमूल्यन हुआ है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उदारीकरण तथा उद्योगों को मिलने वाला संरक्षण कम हुआ। उपरोक्त सभी तत्त्वों ने मिलकर कृषि पर नकारात्मक प्रभाव डाला।

Table 3 : All India Growth Rates of Area (A), Production (P) and Yield (Y) of Crops

Crop	1949-50 to 1964-65			1967-68 to 1980-81			1980-81 to 1989-90			1990-91 to 1999-2000			2000-01 to 2006-07		
	A	P	Y	A	P	Y	A	P	Y	A	P	Y	A	P	Y
Food grain	1.35	2.82	1.36	0.83	2.15	1.33	-0.23	2.85	2.74	-0.07	2.02	1.52	0.38	1.19	1.74
Non Food	2.44	3.74	0.89	0.94	2.26	1.19	1.12	3.77	2.31	1.18	2.69	1.09	2.26	4.62	3.66
All Crops	1.58	3.15	1.21	0.51	2.19	1.28	0.10	3.19	2.56	0.27	2.29	1.33	0.93	2.61	3.07

Source: Agricultural Statistics at Glance, Ministry of Agriculture, Government of India, 2007

Table 4 : Production of Principal Crops (Million tonnes)

Crops	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	2000-01	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07
Rice	34.58	42.22	53.63	74.29	84.98	88.53	83.13	91.79	92.76
Wheat	11.00	23.83	36.31	55.14	69.68	72.15	68.64	69.35	74.89
Coarse cereals	23.74	30.55	29.02	32.70	31.08	37.60	33.46	34.06	34.25
Pulses	12.70	11.82	10.63	14.26	11.07	14.91	13.13	13.39	14.23
Total foodgrains	**82.02**	**108.4**	**129.59**	**176.39**	**196.81**	**213.19**	**198.36**	**208.59**	**216.13**
Oilseeds	6.98	9.63	9.37	18.61	18.44	25.19	24.35	27.98	23.88
Cotton (Lint) @	5.60	4.76	7.01	9.84	9.52	13.73	16.43	18.50	22.70
Jute & Mesta*	5.26	6.19	8.16	9.23	10.56	11.17	10.27	10.84	11.26

Source: Ministry of Agriculture, Government of India, 2007

कृषि उत्पादकता की प्रवत्ति : प्रति इकाई आगत (Input) द्वारा प्राप्त होने वाले उत्पादन को उत्पादकता कहते हैं। कृषि उत्पादकता का मुख्यतः दो प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है।

(i) भूमि की उत्पादकता : इसे प्रति हेक्टेयर उत्पादन द्वारा निरुपित किया जा सकता है। आजादी के शुरुआती समय में सभी फसलों में प्रति हेक्टेअर उत्पादन कम था। दो मुख्यः खाद्यान फसलें i.e. गेहूँ व चावल ने 70 के दशक में उत्पादकता में प्रभावशाली वद्धि अर्जित की। उत्पादकता में यह वद्धि मुख्यतः उच्च उत्पादकता वाले बीजों, सिंचाई साधनों और उर्वरक की उपलब्धता के कारण सम्भव हो सकी। दाल व तिलहन आदि जैसे दूसरी फसलों के उत्पादकता में वद्धि लगभग नगन्य रही। अन्य खाद्यान फसलों में उत्पादकता में वद्धि बहुत धीमी रही। अखाद्यान फसलों में सिर्फ कपास में ही उत्पादकता वद्धि प्राप्त की। तिलहनों में उत्पादकता में वद्धि बहुत ज्यादा उत्साहवर्धक नहीं रही।

Table 5 : Productivity Trends in Major Corps (Yield: Kg per Hectare)

Crops	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	2000-01	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07
Rice	1013	1123	1336	1740	1901	2077	1984	2102	2084
Wheat	851	1307	1630	2281	2708	2713	2602	2619	2617
Coarse cereals	528	665	695	900	1027	1221	1153	1172	1158
Pulses	539	524	473	578	544	635	577	598	594
Total foodgrains	**710**	**872**	**1023**	**1380**	**1626**	**1727**	**1652**	**1715**	**1707**
Oilseeds	507	579	532	771	810	1064	885	1004	895
Cotton (Lint) @	125	106	152	225	190	307	318	362	392
Jute & Mesta*	1049	1032	1130	1634	1867	2008	2019	2173	2154

Source: Ministry of Agriculture, Government of India, 2007

@ Production in million bales of 170 kg. each. * Production in million bales of 180 kg. each.

(ii) कृषि में रोजगारकृत व्यक्तियों की उत्पादकता : इसे प्रति व्यक्ति उत्पाद के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। भारत में प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन, विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि भारत के कुल कार्यकारी जनसंख्या का 52 प्रतिशत कार्यरत है परन्तु इसका राष्ट्रीय आय में योगदान मात्र 18.5 प्रतिशत है। अर्थात शेष 48 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या का राष्ट्रीय आय में योगदान लगभग 80 प्रतिशत है। U.K., U.S.A. आदि विकसित देशों में कृषि का कुल राष्ट्रीय आय व कुल रोजगार में योगदान बहुत कम है जो 5-7 प्रतिशत के मध्य है।

भारतीय कृषि उत्पादकता की अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से तुलना : कुछ फसलों की उत्पादकता विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। Table 6 में कुछ फसलों के लिए भारत व दूसरे देशों में उत्पादकता की तुलना की गई है।

Table 6 : International Camparisions of Yields of Some Selected Commodities - 2003

Yield (Kg./Hectare)

Rice		**Wheat**	
Country	**Yield**	**Country**	**Yield**
Egypt	9430.89	**U.K.**	7777.899
U.S.A.	7447.65	**France**	6234.862
Japan	5849.85	**China**	3906.534
Myanmar	3705.263	**India**	2627.094
Bangladesh	3428.829	**Pakistan**	2380.716
India	3000.295	**Bangladesh**	1992.288
Pakistan	3054.751	**Iran**	1984.675
World	3837.404	**World**	2664.966
Maize		**Groundnut**	
Italy	7744	**China**	2623.805
France	7137.373	**U.S.A.**	3540.49
Egypt	7710.843	**Argentina**	2025.641
China	4854.379	**Brazil**	2082.353
Philippines	1802.012	**India**	937.5
Pakistan	1457.143	**Uganda**	710.9005
India	2114.286	**Sudan**	631.5789
World	4471.689	**World**	1347.466

Source: Compiled from Economic Survey, 2003

कम उत्पादकता के कारण : भारत में कृषि उत्पादकता कम होने के अनेक कारण है। कम उत्पादकता के निम्न कारण हैं।

1. सामान्य कारण

(i) कृषि भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव : भारत में कृषि भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव है। यह दबाव मुख्यतः दो कारणों से है पहला भारत की जनसंख्या में तीव्र वद्धि तथा दूसरा गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार अवसरों का विकास न होना। 2001 में; लगभग तीन चौथाई ग्रामीण जनसंख्या कृषि क्षेत्र में रोजगार पाऐ हुये थी। भारत में कृषि भूमि के बंटवारे का मुख्य कारण जनसंख्या में वद्धि है जिसकी वजह से प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम रहता है।

(ii) सामाजिक वातावरण : भारत में सामाजिक वातावरण जैसे– निरक्षरता, आधुनिक तकनीकी के प्रति उदासीनता, आदि कृषि उत्पादकता में कमी के कारण है। कृषि क्षेत्र में रोजगार कृत व्यक्ति खराब स्वास्थ्य की वजह से सबसे ज्यादा असन्तुष्ट है।

(iii) भूमि की गुणवत्ता में कमी : ग्रामीण क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता में लगातार ह्रास हुआ है। गुणवत्ता में यह ह्रास मुख्यतः दो कारणों से हुआ है। पहला कारण जनसंख्या दबाव है जिसकी वजह से वन क्षेत्र में कमी हुयी है तथा दूसरा कारण भूमि की ऊपरी परत का कटाव है। भूमि की गुणवत्ता में कमी का मुख्य कारण कृषि रसायनों का उपयोग तथा नहर के पानी की खराब गुणवत्ता है। इसकी वजह से भूमि में पोषक तत्त्वों में कमी हुयी है तथा उत्पादकता में कमी दर्ज की गई है।

(iv) सामान्य अध-संरचना की सुविधाओं का अभाव : भारत में सड़क, बिजली, ऊर्जा तथा यातायात आदि जैसी आर्थिक अधःसंरचनाओं की कमी है। ग्रामीण क्षेत्र पर होने वाला सरकारी व्यय लगातार कम हुआ है। कृषि क्षेत्र में पूँजी निर्माण

की कमी हुयी है। कृषि क्षेत्र में निवेश जो 1990 में कुल GDP का 1.92 प्रतिशत था जो कम होकर 2003 में 1.31 प्रतिशत रह गया है।

2. संस्थागत कारण

(i) खराब भूमि व्यवस्था : भारत में जमींदारी के रूप में प्रचलित भूमि व्यवस्था ने उत्पादकता को कम बनाये रखने में अहम भूमिका अदा की है। जमींदारी प्रथा के कारण कृषकों में भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं था। जमींदारी व्यवस्था के अन्तर्गत, ज्यादा भूमि लगान, भूमि पट्टे की असुरक्षा और भूमि पर कोई स्वामित्व अधिकार न होने के कारण, कृषकों को अपनी फसल का एक बड़ा हिस्सा जमींदारों को देना पड़ता था। इसके कारण उनके पास संसाधनों की कमी रहती थी ओर वे कृषि में नयी तकनीकी का प्रयोग करने में असमर्थ रहते थे। कृषि में नयी तकनीकी का प्रयेाग न होने के कारण उत्पादकता कमी बनी रही।

(ii) अ-आर्थिक भूमि वितरण : भारत में औसत भूमि वितरण छोटा है। भूमि का वितरण छोटा ही नहीं है अपितु यह छोटे-छोटे खेतों के रूप में भी बिखरा हुआ है। भारत में औसत भूमि उपलब्धता 2.30 हेक्टेयर है। जब कृषि योग्य खेतों का आकार छोटा हो तो उसमें नयी तकनीकी के प्रयोग की सम्भावना कम रहती है जिससे भूमि उत्पादकता में कमी होती है।

(iii) वित्त व विपणन सुविधाओं का अभाव : भारत में कृषि के लिए वित्त सुविधाओं का अभाव रहा है। संस्थागत वित्त सुविधाओं में कमी कृषि में उत्पादकता का कम होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। यदि हम तथ्यों पर नजर डालें तो यह स्पष्ट है कि 1990 के दशक कृषि को उपलब्ध संस्थागत वित्त, 1980 के दशक में उपलब्ध वित्त से कम था। बैंक व अन्य वित्तीय संस्थान कृषि को कम ब्याज दर पर ऋण देने के लिए सहर्ष तैयार नहीं रहे। यद्यपि 2003 के पश्चात सभी व्यापारिक बैंकों द्वारा कृषि को दिये जाने वाले ऋण में निरपेक्ष वद्धि हुई है परन्तु इन वर्षो में सबसे खतरनाक प्रवत्ति जो उभरकर सामने आयी वह इन संस्थानों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से दिये जाने ऋण में वद्धि है। कृषि को प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध वित्त में लगातार कमी हुई है। इस कारण से, कृषकों के एक बड़े समूह को गैर-संस्थागत वित्त पर निर्भर रहना पड़ता है। यह गैर संस्थागत वित्त ज्यादातर उच्च ब्याज दर पर होता है। इससे किसानों की बचत करने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कृषि अलाभकारी होती जा रही है। क्योंकि वित्त तथा ऋण की कमी है तथा जो भी उपलब्ध है वह ऊँची ब्याज दर पर ही उपलब्ध है तो इस स्थिति में कृषि सुधार कार्यक्रमों में निवेश कर पाना बहुत मुश्किल हो जाता है। निवेश की कमी के कारण कृषि उत्पादकता में वद्धि बहुत कठिन है तथा कृषि उत्पादकता निम्न स्तर पर बनी रहती है।

3. तकनीकी कारण

(i) तकनीकी पिछड़ापन : भारत में ज्यादातर कृषक परम्परावादी तकनीक का प्रयोग करते हैं। क्योंकि उनके पास संसाधनों की कमी है अतः वे नयी तकनीक का प्रयोग नहीं कर पाते हैं। उच्च उत्पादकता वाले बीजों व रासायनिक उर्वरक का प्रयोग बहुत ही सीमित है। 1990 के दशक में आर्थिक सुधारों के पश्चात कृषि व अनुसंधान व ट्रेनिंग कार्यक्रमों में सरकारी निवेश कम हुआ जिसके कारण नयी तकनीक की खोज व प्रयोग और भी सीमित हो गये हैं। कृषि विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थान जो कृषि तकनीकी के विकास और उसके प्रयोग को प्रसारित करने में लगे हुये हैं, आर्थिक सुधारों के पश्चात्, संसाधनों की कमी महसूस कर रहे हैं जिसका कृषि उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। कृषक को नयी तकनीकी के लिए, सरकारी प्रयासों के अभाव में, ज्यादा कीमत चुकानी पड़ रही है इसलिए नयी तकनीकी को उपयोग में लाने की उसकी क्षमता व इच्छाशक्ति दोनों में ही कमी हो रही है। जिसके कारण कृषि उत्पादकता का स्तर निम्न है।

(ii) आगत लागतों में वद्धि : उर्वरक, उच्चगुणवत्ता के बीज व कीटनाशकों आदि को मिलने वाली आर्थिक सहायता में लगातार कमी हो रही है। जिसकी वजह से इनकी कीमतों में वद्धि हो रही है। क्योंकि ये कृषि उत्पादन में प्रयोग होने वाले महत्त्वपूर्ण आगत हैं। जिसके कारण कृषि उत्पादन की लागत में वद्धि हो रही है। जिसके कारण कृषि लगातार अलाभकारी होती जा रही है। अलाभकारी कृषि का उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है।

(iii) सिंचाई सुविधाओं का अभाव : भारत में ज्यादातर कृषि क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है। 2003 में कुल कृषि क्षेत्र का केवल 52.4 प्रतिशत ही सिंचाई सुविधाओं द्वारा युक्त था। अर्थात अभी भी लगभग 80% मानसून पर निर्भर करता है। यदि अच्छा मानसून रहे तो कृषि उत्पादन में प्रशंसनीय वद्धि देखने को मिलती है अन्यथा कृषि उत्पादन का स्तर निम्न बना रहता है। इसका सीधा-सीधा प्रभाव कृषि उत्पादकता पर पड़ता है। सिंचाई सुविधाओं और बाढ़ नियन्त्रण पर होने वाले सरकारी खर्चे में लगातार कमी आ रही है जो कि कृषि उत्पादकता पर भी प्रभाव डाल रहा है।

4. कृषि उत्पादकता के बढ़ाने के लिए उपाय

(i) भूमि सुधारों का क्रियान्वयन : भारत में भूमि सुधारों का प्रभावकारी रूप से क्रियान्वयन होना चाहिए। यह कृषकों को भूमि की उत्पादकता में वद्धि करने के लिए प्रेरित करेगा तथा कृषक कृषि में निवेश करेंगे। भूमि सुधारों के क्रियान्वयन के लिए मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति व प्रशासनिक प्रयासों की जरूरत है।

(ii) आधुनिक तकनीकी का प्रयोग : आधुनिक तकनीकी के अन्तर्गत उच्चगुणवत्ता के बीज, उर्वरक, कीटनाशक तथा आधुनिक मशीनरी का प्रयोग शामिल है। आधुनिक तकनीकी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए, इन सब चीजों को आसान कीमतों पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इस तकनीकी के प्रयोग को आसान बनाने के लिए किसानों को मुफ्त में ट्रेनिंग सुविधाऐं उपलब्ध करायी जानी चाहिए। वास्तव में कृषकों में आधुनिक तकनीकी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए द्वितीय हरित क्रान्ति की जरूरत है।

(iii) अच्छी वित्त सुविधायें : अच्छी तकनीकी को प्रयोग में लाने के लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि कृषकों को पर्याप्त व कम ब्याज दर पर वित्त सुविधाऐं उपलब्ध करायी जाऐं। यह वित्त पर्याप्त और कम ब्याजदर पर उपलब्ध होने के साथ-साथ समय पर भी उपलब्ध होना चाहिए। भूतकाल में सरकारी कृषि वित्त व्यवस्था को मजबूत करने के लिए बहुत से कार्य किये हैं। जिनमें ग्रामीण बैंकों की स्थापना, को-ओपरेटिव बैंक की स्थापना, व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण आदि। यद्यपि सहयोग की कमी के कारण, ये प्रयास बहुत ज्यादा प्रभावकारी नहीं हो पाऐ हैं। व्यापारिक बैंकों में कृषि क्षेत्र को ऋण उपलब्ध कराने में, मनोबल की कमी देखने को मिलती है। अतः एक ऐसी वित्त व्यवस्था की जरूरत है जो ग्रामीण क्षेत्रों में वित्त देने के लिए स्व-स्फूर्त्त हो तथा कृषि से सम्बन्धित अन्य सहायताऐं उपलब्ध करा सके।

(iv) कृषि पैटर्न का पुनर्गठन : कृषि उत्पादकता में वद्धि करने के लिए कृषि पैसे का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। इस पुनर्गठन में फसल-चक्र पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए।

(v) सिंचाई सुविधाओं का विकास : कृषि उत्पादकता में वद्धि तथा नयी तकनीकी के प्रयोग में सबसे बड़ी बाधा सिंचाई सुविधा का अभाव है। अतः सिंचाई सुविधाओं का विकास किया जाना चाहिए। तथा शुष्क कृषि को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इस दिशा में वैज्ञानिक प्रयास करने की जरूरत है। ऐसे बीजों व जिंसो की खोज की जानी चाहिए जो कम सिंचाई पर ही पर्याप्त उत्पादन दे सकें।

(vi) अनुसंधान संस्थाओं का विकास : नयी तकनीकी, उच्चगुणवत्ता के बीजों, उच्च सामर्थ्य वाले कीटनाशकों तथा ऐसे बीजों को विकास जो कम सिंचाई पर पर्याप्त उत्पादन दे सके आदि के विकास के लिए, यह सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि अनुसंधान संस्थाओ की स्थापना की जाए, उन्हें पुनः व्यवस्थित किया तथा अनुसंधान की गुणवत्ता में सुधार किया जाए। इसके लिए सरकारी प्रयास की जरूरत है तथा साथ ही साथ निजी क्षेत्र को भी महत्त्वपूर्ण सहयोग व प्रयास करना चाहिए।

(vii) जनसंख्या नियन्त्रण : जनसंख्या में होने वाली वद्धि, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों, में भूमि के बंटवारे का मुख्य कारण है। यदि कृषि योग्य भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित है तो नयी तकनीकी के प्रयोग की सम्भावना कम रहती है तथा उत्पादकता में वद्धि नहीं की जा सकती। अतः यह आवश्यक है कि जनसंख्या में होने वाली वद्धि दर नियन्त्रित किया जाए ताकि कृषि योग्य भूमि का आगे और बंटवारा न हो।

कृषि नीति 2000

28 जुलाई 2000 को सरकार ने राष्ट्रीय कृषि नीति की धोषणा की जिसका मुख्य उद्देश्य 2005 तक कृषि में 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वद्धि को प्राप्त करना था। कृषि उत्पादन में यह वद्धि संरचनात्मक, संस्थागत, तथा कर सुधारों के प्रयास द्वारा प्रति की जाती थी। इसके मुख्य घटक निम्नलिखित हैं–

- W.T.O. के परिप्रेक्ष्य में किसानों को कीमत संरक्षण प्राप्त करवाना।
- कमागत खेती तथा भूमि को पट्टे पर देने की विधियों द्वारा कृषि क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देना। यह कृषि में तकनीकी हस्तांतरण, पूंजी प्रवाह, कृषि उत्पादों के लिए बाजार आदि क्षेत्रों में सहयोग प्रदान करेगा।
- कृषि क्षेत्र में sustainable (त्वरित) विकास, लाभकारी रोजगार तथा जीवनस्तर में सुधार के लिए, सरकारी वस्तु-बाजार (Commodity-Market) को मजबूत करेगी जो कृषि उत्पादों को बाजार में अपनी सही कीमत प्राप्त करने में सहायक होगा।
- सरकार नये विधान बनाकर, देश की मौखिक विविधता को संरक्षण प्रदान करेगी तथा पादप विविधता को नयी जिंस पैदा कर प्रोत्साहन दिया जाएगा। पशुपालन, मुर्गीपालन, डेयरी तथा मछलीपालन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाएगा।

- कृषि उत्पादों के पूरे देश में स्वतन्त्र व्यापार पद्धति को सरकार धीरे-धीरे प्रोत्साहित करेगी। खाद्यानों तथा दूसरी व्यापारिक फसलों पर कर की पुनर्समीक्षा की जाएगी।
- कृषि मशीनरी पर लगने वाले उत्पादन कर की भी पुनर्समीक्षा की जाएगी।

इस बात के समुचित उपाय किये जाएंगे कि

- कृषि विकास को ध्यान में रखते हुये, ग्रामीण विद्युतीकरण को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाऐगा।
- सिंचाई व अन्य कृषि कार्यों के लिए नयी व विकल्प ऊर्जा का विकास किया जाएगा।
- कृषि व ग्रामीण क्षेत्र को उचित समय पर पर्याप्त वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए वित्तीय संस्थाओं को और मजबूत किया जाऐगा।
- इस बात के भी प्रयास होने चाहिए कि किसानों को बुवाई से लेकर फसल के अन्तिम रूप से तैयार होने तक तथा उसके बाद, बाजार मुल्यों में लगातार होने वाले उतार-चढ़ाव से संरक्षण देने के लिए बीमा नीति का विकास किया जाऐगा।

कृषकों के लिए राष्ट्रीय नीति 2007 :

राष्ट्रीय किसान आयोग की सिफारिशों का ध्यान में रखते हुए तथा राज्य सरकारों में मंत्रणा के बाद, भारत सरकार ने, किसानों के लिए राष्ट्रीय नीति 2007 को स्वीकार कर लिया। राष्ट्रीय नीति ने कृषि क्षेत्र के विकास एक वहत स्तर पर प्रयासों की बात की है। इस नीति के मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं–

- उत्पादन व उत्पादकता के अलावा, मुख्य प्रयास कृषकों के कल्याण पर होगा।
- इस बात की व्यवस्था की जाएगी कि एक कृषक की या तो कुछ उत्पादक सम्पत्ति हो या फिर बाजार में प्रयोग होने योग्य ज्ञान हो।
- पानी का समझदारी से प्रयोग।
- *नयी तकनीकीः* जैव-तकनीकी, सूचना व संचार तकनीकी नैनो तकनीकी, आदि नई तकनीकियों के प्रयोग का कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रयोग व प्रोत्साहन किया जाऐगा।
- राष्ट्रीय कृषि जैव सुरक्षा व्यवस्था की स्थापना की जाएगी।
- *बीज व भूमि स्वास्थ्यः* गुणवत्ता वाले बीज, रोग-रहित पौधे, भूमि स्वास्थ्य आदि उत्पादकता में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान करते हैं। इस दिशा में प्रयास किये जाएंगे।
- *महिलाओं के लिए सहायक सेवाऐंः* जो महिलाऐं खेतों में कार्य करती हैं उन्हें विभिन्न प्रकार की सहायक सेवाऐं जैसे – शिशु संरक्षण, खाद्य पदार्थ आदि प्रदान करायी जाएंगी।
- *वित्त व बीमाः* वित्तीय सेवाओं का इस प्रकार आयोजन किया जाएगा जिससे कि किसानों को समय पर तथा उचित व पर्याप्त वित्त प्राप्त हो सके।
- ज्ञान चौपाल, कृषि ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने में सहायता करेगा।
- *न्यूनतम सहायक कीमतेंः* (MSP) – इस व्यवस्था का पूरे देश के अन्तर्गत और भी ज्यादा प्रभावी रूप से क्रियान्वयन किया जाऐगा। ये कृषि को लाभकारी बनाने में सहायता करेगा।
- खाद्य सुरक्षा की व्यवस्था, इसके लिए बाजरा, मलूका तथा अन्य मोटे अनाज को खाद्य सुरक्षा के अन्तर्गत शामिल किया जाएगा।

पाठ 2

भूमि सुधार

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप समझेंगे

- भारत में भूमि सुधार का अर्थ व उसके पीछे तर्क
- भूमि सुधारों के संघटक
- भारत में भूमि सुधारों की प्रगति व मुल्यांकन
- सरकारी उपाय

प्रस्तावना

कृषि कार्यों में भूमि सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है। भूमि के पट्टे का आकार, वितरण तथा स्वामित्व, कृषक की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का निर्धारण करता है। ये सभी कारक, भारत के कृषि की संस्थागत संरचना के महत्त्वपूर्ण भाग हैं। कृषि के संस्थागत संरचना, कृषि उत्पादकता को प्रभावित करती है। भारत में भूमि का स्वामित्व व नियन्त्रण मुट्ठी भर लोगों के हाथ में था जिनका उद्देश्य किराऐदारों से ज्यादा किराया वसूल करना था। जिसके परिणामस्वरूप भारत में कृषि उत्पादकता का लगातार ह्रास हुआ तथा किरायेदारों के शोषण की वजह से उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति भी लगातार खराब होती गई। भारत में भूमि सुधार, कृषि उत्पादकता बढ़ाने तथा किरायेदारों को शोषण से मुक्त करने के लिए किऐ गये थे।

1. भूमि सुधार

अर्थ व तार्किकता : भारत में जोत का आकार छोटा है तथा साथ-ही-साथ बिखरा हुआ है। जो कृषि उत्पादन के लिए अलाभकारी है। भारत में भूमि वितरण में भी बहुत असमानता देखने को मिलती है। भारत में भूमि का ज्यादातर भाग कुछ लोगों के स्वामित्व है तथा एक छोटा भाग ही बहुत बड़ी जनसंख्या में वितरित है। एक कृषि सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 63 प्रतिशत किसानों की जोत का आकार 1 हेक्टेयर से कम था। ऐसे कृषक जिनकी जोत का आकार 10 हेक्टेयर से ज्यादा था, केवल 2 प्रतिशत है। ऐसे व्यक्ति या तो जिनके पास या तो बहुत कम जोत थी या जोत थी ही नहीं उनका कुल कृषक परिवारों में 45 प्रतिशत भागीदारी थी।

भारत में जमींदारों के रूप में एक शोषक वर्ग भी था जो भूमि के वास्तविक जोतदार (cultivator) से ज्यादा से ज्यादा भूमि लगान वसूल करते थे। भूमि के वास्तविक जोतदार के पास भूमि का स्वामित्व नही था तथा भूमि पर एक लगानदारी की भूमिका में काम किया जिसे भूमि से जमींदार के इच्छानुसार कभी भी निष्कासित किया जा सकता था। इससे भूमि के वास्तविक जोतदार की दशा बहुत ही दयनीय थी। इस प्रथा के कारण जोतदारों में भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के कोई इच्छाशक्ति भी नहीं थी। भारत में भूमि सुधारों की शुरुआत जोतदार की स्थिति में सुधार करने तथा कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए की गई थी। इस प्रकार भूमि सुधारों के लिए निम्न तर्क दिये जा सकते हैं–

(i) यदि जोतदार ही भूमि का स्वामी है तो उसमें जमीन के प्रति लगाव होता है जो भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होता है। लगान पर खेती करने वाली कृषकों या मजदूरी पर करने वाले कृषकों में उत्पादन बढ़ाने के लिए इच्छाशक्ति की कमी होती है। एक ऐसा जोतदार, जिसके पास भूमि के पट्टे की सुरक्षा नहीं है तथा जिसे ऊँचा लगान देना पड़ता है, की भूमि में निवेश नहीं करेगा। जिसके परिणामस्वरूप भूमि की उत्पादकता कम बनी रहेगी। यदि भूमि सुधारों द्वारा भूमि का वितरण वास्तविक जोतदार के पक्ष में कर दिया तथा भूमि का स्वामित्व उसे सौंप दिया जाय तो कृषि उत्पादकता को बढ़ाने में मदद मिलेगी।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि सबसे उत्पादक सम्पत्ति होती है। भूमि का स्वामित्व व्यक्ति की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का निर्धारण करता है। यह भूमि का वितरण गरीबों के पक्ष में कर दिया जाए तो इससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा तथा उन्हें वित्त की सुविधा भी उपलब्ध होगी। यह प्रयास ग्रामीण क्षेत्रों गरीबी व आय असमानताओं को दूर करेगा।

(iii) इस आर्थिक पहलू के अलावा, भूमि सुधारों का सामाजिक प्रभाव भी पड़ता है। यदि भूमि स्वामित्व न्यायिक तथा समान हो तो इससे समाज में न्याय व समानता बढ़ती है। एक असमान वितरण, गरीबी व समाजिक तनाव को जन्म देगा। इससे समाज में उपद्रव, अपराधों को बढ़ावा मिलेगा।

(iv) छोटे व सीमान्त जोत की वजह से भूमि का पूर्ण-उपयोग नहीं हो पाता है।

(v) छोटी जोतों की वजह से वातावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। छोटी जोतों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उर्वरक व कीटनाशकों का अति-उपयोग किया जाता है जिससे वातावरण प्रभावित होता है। इससे भूमि की उत्पादकता कम होती है। भूमि का ज्यादा सिंचाई से भूमि के अधिक नमकीन होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

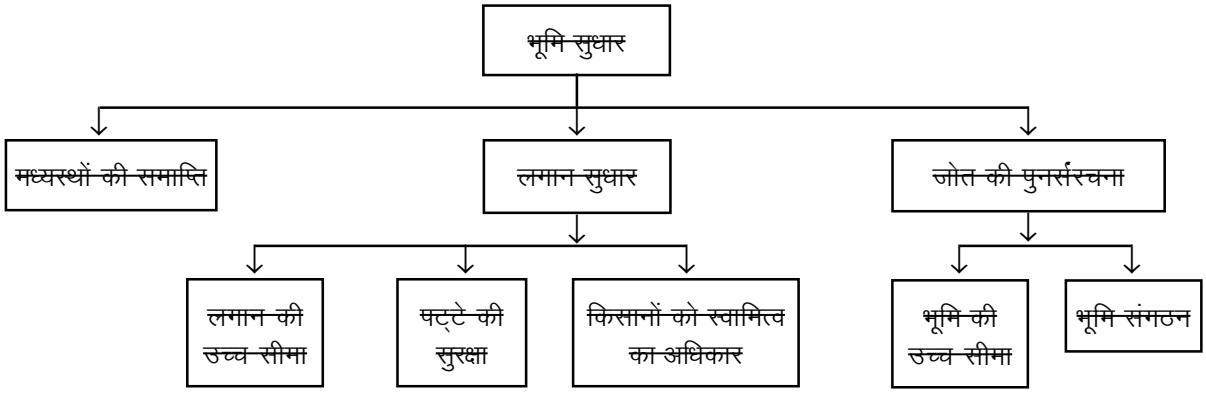
भूमि सुधार की परिभाषा : भूमि सुधार को ऐसे संस्थागत परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें भूमि सम्बन्ध वास्तविक जोतदार के पास निर्धारित होते हैं तथा जोत के आकार को, भूमि वितरण द्वारा बढ़ाया जाता है। भूमि सुधार में मुख्यतः दो तरह के परिवर्तन सम्मिलित होते हैं पहला जोतदार तथा कर स्वामी के सम्बन्धों को पुनःभाषित करना तथा दूसरा जोत का आकार में परिवर्तन जिसके फलस्वरूप जोत लाभकारी हो जाए। भूमि सुधारों का मुख्य उद्देश्य कृषि वद्धि को बढ़ावा देना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक न्याय की व्यवस्था करना है। भूमि सुधार के अन्तर्गत निम्न उपाय सम्मिलित हैं–

(i) मध्यस्थों को हटाना

(ii) लगान सुधार

(iii) जोत आकार की पुनर्संरचना

Chart



मध्यस्थों की समाप्ति : मुख्यतः भूमि पट्टे की व्यवस्था को तीन तरीकों से विभाजित किया जा सकता है। (i) रायतवाड़ी (ii) महलवाड़ी (iii) जमींदारी। रायतवाड़ी व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि के स्वामित्व का अधिकार जोतदार के पास ही होता है तथा वह अपना लगान सीधा सरकार को देता है। जोतदार अपनी सम्पत्ति को पुनः लगान पर दे सकता है। महलवारी व्यवस्था के अन्तर्गत, किसानों का समूह भूमि का स्वामी होता है। इसमें भूमि किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि महल की होती है। सभी सम्मिलित रूप से खेती करते है तथा होने वाली आय को बांट लेते हैं। इस व्यवस्था में महल साम्मिलित रूप से लगान चुकाता है।

जमींदारी व्यवस्था के अन्तर्गत एक या कुछ परिवारों के पास एक या कुछ ज्यादा गाँवों की जमींन होती है। तथा परिवार ही सरकार को लगान चुकाते हैं।

इस व्यवस्था की मुख्य समस्या यह थी कि जमींदारों के पास जमीन का स्वामित्व था पर असली जोतदार कोई और था। इन जमींदारों ने उन किसानों से जो लगानदार थे, ज्यादा से ज्यादा लगान वसूल किया तथा शोषण किया। इससे लगानदारों की हालत दयनीय होती चली गयी। इस व्यवस्था के चलते, कृषि उत्पादकता बढ़ाने के कोई प्रयास नहीं किया गया।

ये सभी मध्यस्थ लगभग देश की 40 प्रतिशत खेती योग्य जमीन पर अधिकार प्राप्त किये हुये थे। इस मध्यस्थ प्रथा को समाप्त करने के लिए 1948 से ही विधान बनाकर प्रयास किये गये हैं। मद्रास में सबसे पहले विधान बनाया गया। बाद में अन्य राज्यों ने भी प्रयास किया। मध्यस्थों की समाप्ति किसानों के एक समूह को सरकार के साथ सीधे सम्पर्क में ले आयी। अर्थात् जोतदारों को भूमि का स्वामी बनाया गया था तथा उन्हें लगान सीधे सरकार को देना है।

आलोचनात्मक मूलांकन

(i) विधान बनाने व क्रियान्वयन में देरी : जमींदारी उन्मूलन के लिए विधान बनाने में पर्याप्त देरी की गई जिससे

जमींदारों को इस बात के लिए समय मिल गया कि वह किसानों को जमीन का हस्तान्तरण न करने के अन्य उपाय कर सकें। विधान के क्रियान्वयन में भी देरी की गई तथा क्रियान्वयन पूरी तरह नहीं किया गया। जमींदारों ने जमीन के कागजात सरकार को सौंपने में देरी की तथा न्यायालय भी गये। जिसमें विधान क्रियान्वयन में देरी हुई।

(ii) **विधान में कमियाँ :** जमींदारी उन्मूलन के लिए लाऐ गऐ विधान में पर्याप्त कमियाँ थी जिसका बड़े जमींदारों ने भरपूर फायदा उठाया। उदाहरण के लिए विधान में यह व्यवस्था थी कि जमींदार स्वयं कृषि के लिए जोतदार से अपनी जमीन वापस ले सकता है। "स्वः जोत" (Personal Cultivation) की परिभाषा भी बहुत ज्यादा लचीली थी। इस प्रकार जमींदारों ने ज्यादातर जमीन को वापस ले लिया जिसमें मजदूरों की सहायता से खेती की।

(iii) विधान में और भी कमियां थी जिसका जमींदारों ने भरपूर फायदा उठाया। जैसे स्वेच्छा से भूमि का समर्पण। क्योंकि लगानदारों की सामाजिक-आर्थिक हालत बहुत कमजोर थी तो दबाव बनाकर जमींदारों ने भूमि का समर्पण करा लिया जो स्वेच्छा के अलावा सब कुछ था।

लगान सुधार : लगान पर कृषि करना भारत में बहुत ही प्रचलित है। इसमें कृषक जमीन को लगान पर लेता है तथा फसल में से एक हिस्सा भूमि के स्वामी को अदा करता है। मुख्यतः दो तरह के लगानदार थे (i) स्थायी लगानदार (occupancy tenant) (ii) अस्थायी लगानदार (Tenant-at-will)। स्थायी लगानदार के सम्बन्ध में खेती करने का अधिकार स्थायी था जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता था। परन्तु अस्थायी लगानदार को जमींदार कभी भी कृषि भूमि से निष्कासित कर सकता था अस्थायी लगानदारों की दशा ज्यादा दयनीय थी। इनके पट्टे पर असुरक्षा थी तथा जमींदार लगान भी ज्यादा वसूलते थे और बेगार भी लेते थे। सरकार ने विधायी प्रयासों द्वारा इस बात की व्यवस्था की कि लगानदार को पट्टे की सुरक्षा मिले तथा लगान भी बहुत ज्यादा न हो। लगान सुधारों में निम्न पहलू थे–

(i) *लगान की उच्च सीमा* : इसमें लगानदार द्वारा दिये जाने वाले लगान की उच्च सीमा निर्धारित कर दी गयी थी। ज्यादातर राज्यों में यह एक चौथाई से पांचवें भाग तक था।

(ii) *पट्टे की सुरक्षा* : लगानदारों को अब जमीन से निष्कासित नहीं किया जा सकता था यदि वे लगान समय पर दे रहे है।

(iii) कृषकों को भू-स्वामित्व का हस्तांतरण : उन सभी कृषकों को जो पट्टे पर खेती कर रहे थे, भू-स्वामित्व हस्तांतरण कर दिया गया लेकिन उन्हें भू-स्वामित्व प्राप्त करने के लिए जमींदारों को भूमि का मूल्य चुकाना था।

आलोचनात्मक मूल्यांकन : लगान सुधार में सफलता अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग रही। लगान सुधारों की वजह से बहुत से लगानदारों व मजदूरों को भू-स्वामित्व प्राप्त हुआ है। यद्यपि इसमें भी जमींदारी उन्मूलन का विधानात्मक तथा क्रियान्वयानात्मक कमियाँ रही हैं।

ज्यादातर राजनेता बड़े जमीनदार थे तो उन्होंने भूमि सुधारों को प्रक्रिया को धीमा बनाऐ रखा तथा क्रियान्वयन भी पूरी इच्छाशक्ति से नहीं किया गया। प्रशासनिक सहयोग भी नहीं मिल पाया। जमीनदारों ने दबाव बनाकर लगानदारों से भूमि का स्वैच्छिक समर्पण करा लिया तथा जो किसान भूमि का स्वामित्व लेना चाहते थे उनके पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन नहीं थे। इसलिए वे भू-स्वामित्व के अधिकार प्रापत करने में असमर्थ रहे।

लगान की दर में भी ज्यादा कमी नहीं की गई। ज्यादातर राज्यों में अधिकतर भुमि को लगान में लाने की जगह लगान निर्धारण किया गया जो पहले से चले आ रहे लगान के समान ही था।

3. जोत का पुनर्गठन

जोत के पुनर्गठन का उद्देश्य जोतदार के लिए जोत के आकार को प्रभावित करना होता है जिससे कि जोत का आकार बड़ा किया जा सके और जोत लाभदायक हो जाए। यदि जोत का आकार बड़ा है तो आधुनिक तकनीकी का प्रयोग सहज व आसान हो जाता है। जोत के पुनर्गठन के लिए निम्न उपाय किये गऐ –

(i) *जोत के आकार की उच्चसीमा* : विधान द्वारा यह निश्चित व निर्धारित किया गया कि एक व्यक्ति या परिवार अधिकतम कितनी जोत का स्वामी हो सकता है। इस सीमा से ज्यादा उपलब्ध जोत को अतिरिक्त घोषित कर दिया गया जो छोटे, सीमान्त तथा भूमिहीन किसानों में वितरित कर दी गयी। यद्यपि भूमि की उच्चतम सीमा अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग थी। इसमें कोई समानता नहीं देखने को मिलती है। शुरुआत से ही अतिरिक्त भूमि व उसके वितरण के लिए सरकार ने उद्देश्य निर्धारित किए जिन्हें ज्यादातर प्राप्त नहीं किया जा सका। विधान का क्रियान्वयन भी पूर्ण इच्छाशक्ति से नहीं किया गया।

(ii) *जोत का संगठन* : कृषिकों की जोत छोटी व बिखरी हुई थी। इस बात का प्रयास किया गया कि बिखरी हुई जोतों को इकट्ठा करके एक जगह दे दिया जाए जिससे कृषक की जोत का आकार बड़ा हो सके। क्योंकि भारत में ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या बहुत ज्यादा है तथा भूमि पर जनसंख्या दबाव ज्यादा होने से भूमि का लगातार बटवारा हो गया तथा जोत का आकार भी छोटा होता गया।

भूमि के बटबारे के कारण जोत का आकार बहुत छोटा हो गया। छोटी जोत पर कृषि करना बड़ा ही मुश्किल व अलाभदायक हो गया तथा इसके कारण संसाधनों का समुचित उपयोग नहीं किया जा सका। क्योंकि संसाधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा था तो कृषि लागत में वद्धि हुई। कृषि लागत में वद्धि का एक और कारण परम्परागत तकनीकी प्रयोग भी रहा। क्योंकि छोटी जोतों पर आधुनिक तकनीकी का प्रयोग बहुत मुश्किल हो गया। इन सभी कारणों से छोटी जोतों पर कृषि अलाभदायक एवं प्रतिकूल असर पड़ा।

नयी तकनीकी जैसे ट्रैक्टर, पम्प सेट तथा आधुनिक सिंचाई सुविधाओं का प्रयोग भी छोटी जोतों पर मुश्किल होता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन : सुधारों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में भू-स्वामित्व में असमानता में कमी लाना। भूमि पर उपलब्ध आंकड़े स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि अभी भी भारत में भूमि वितरण में असमानता व्याप्त है तथा भूमि का कुछ एक व्यक्तियों के पास होना ग्रामीण क्षेत्र में सामान्य बात है। भूमि के पुनर्गठन में धीमी गति के निम्न कारण हैं–

(i) *सामाजिक कारण* : किसानों में अपनी जोत को लेकर एक भावनात्मक लगाव होता है इसलिए पुनर्गठन में स्वेच्छा से सम्मिलित नहीं होते हैं।

(ii) क्योंकि भूमि की गुणवत्ता एक जगह से दूसरी जगह अलग-अलग होती है। अतः एक जमीन के बदले में दूसरी जमीन देने में मुश्किलें होती हैं।

(iii) रिकार्ड का उपलब्ध न होना तथा प्रशासनिक मशीनरी का दक्ष न होना भी एक और महत्त्वपूर्ण कारण जिसके कारण पुनर्गठन में पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

(iv) *भ्रष्टाचार* : भ्रष्ट प्रशासन ने बड़े जमींदारों से मिलकर भूमि के पुनर्गठन में कठिनाईयाँ उत्पन्न की है।

(v) ज्यादातर मामलों में कृषकों ने न्यायालय का सहारा लिया है। कृषक अच्छी भूमि पाने के लिए, न्यायालय तक जाते है जिससे क्रियान्वयन में देरी होती है।

(vi) *राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव* : सुधारों के क्रियान्वयन में राजनैतिक इच्छा का अभाव देखने को मिलता है।

क्या किया जा सकता है?

(i) *कानूनी संरचना को मजबूत करना* : विधान में उपस्थित कमियों को दूर किया जाना चाहिए। विधान में ऐसी कमियों को जिनकी दोहरी व्याख्या हो सकती है, दूर किया जाना चाहिए। मतभेदों व झगड़ों के जल्दी निवटारों की व्यवस्था की जानी चाहिए। कृषि से सम्बन्धित नियमों को आसान बनाया जाना चाहिए।

(ii) *भूमि रिकार्ड का कम्प्यूटरीकरण* : भारत में भूमि सुधारों के सफल न होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण भूमि रिकार्ड उपलब्ध न होना है। प्रशासनिक मशीनरी को इस बात की व्यवस्था की जानी चाहिए कि भूमि रिकार्ड एकत्रित किया जाए। इस दिशा में कम्प्यूटरीकरण एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। कम्प्यूटरीकरण भूमि रिकार्ड को ज्यादा व्यवस्थित तरीका से उपलब्ध कराता है। यदि भूमि रिकार्ड व्यवस्थित हो तो अनिस्थित भूमि, भू-स्वामित्व की प्रवत्ति आदि पर महत्त्वपूर्ण जानकारी मिल सकती है जो भू-सुधार में सहायक सिद्ध हो सकता है।

(iii) क्योंकि भारत में छोटे, सीमान्त व भूमिहीन किसान ज्यादातर अशिक्षित हैं। उन्हें ज्यादा आधुनिक जानकारी नहीं होती है। उनके पास संसाधनों की भी कमी होती है। जिसके कारण भू-सुधारों के उपाय के बारे में उन्हें ज्यादा जानकारी नहीं होती है। इस सभी समस्याओं को दूर करने के लिए अर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए तथा कृषकों को जागरुक बनाया जाना चाहिए।

(iv) प्रशासनिक कर्मचारियों को भूमि-सुधारों के उद्देश्य के प्रति ज्यादा संवेदनशील बनाया जाना चाहिए तभी प्रशासनिक कर्मचारी भू-सूधारों को ज्यादा ईमानदारी से क्रियान्वित करेंगे।

(v) *व्यक्तियों की भागीदारी* : N.G.O., व्यक्तियों आदि को भू-सुधारों की प्रक्रिया में भागीदार बनाया जाना चाहिए।

(vi) राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी, भू-सुधार के सफल न होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा है। मजबूत राजनीतिक इच्छा शक्ति का विकास किया जाना चाहिए।

समापन : भारत में भु-सुधारों का इतिहास मिला-जुला रहा है। कुछ राज्यों व क्षेत्रों में भू-सुधारों ने सफलता प्राप्त की है परन्तु कुछ अन्य राज्यों तथा क्षेत्रों के बारे ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। मध्यस्थों के उन्मूलन में भू-सुधार पूरी तरह से सफल रहे हैं। लेकिन लगान सुधार तथा जोतों के पुनर्गठन के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। कुछ दूसरे मुद्दों का अभी तक समाधान नही हो पाया है।

भूमिहीन मजदूरों की संख्या में लगातार वद्धि हो रही है। 1951 में, शीर्ष 10 प्रतिशत लोगों के पास जितनी भूमि थी, उससे ज्यादा भूमि आज उनके पास है। जमींदारों के निहित उद्देश्यों तथा राजनीति व प्रशासन में मजबूती के कारण आगे भूमि सुधारों और उनके क्रियान्वयन पर नियन्त्रण लगा रखा है।

पाठ 3

हरित क्रान्ति

इस अध्याय के अध्ययन से आप निम्नलिखित समझेंगे

- हरित क्रांति का अर्थ और उसके घटक
- भारतीय कृषि पर हरित क्रांति का प्रभाव
- हरित क्रांति की समस्याएँ

परिचय

कृषि की प्रकिया में क्रांतिकारी परिवर्तन जो कि आगतों और कृषि पद्धति से आया यह हरित क्रांति कहलाता है, हरित क्रांति तकनीकी परिवर्तनों से हुई जिसे कृषि की उत्पादकता में वद्धि हो गई 60's के मध्य में कृषि रणनीति में परिवर्तन करने से हरित क्रांति हुई जिससे भारत ने खाद्यान की आत्म-निर्भरता प्राप्त की।

नई कृषि रणनीति के मुख्य घटक

(i) अधिक-उत्पादन करने वाले बीज (HYV) का उपयोग : जिससे फसल एक समय अवधि में पक जाती है।

(ii) खाद्यान, जैविक खाद्य और रसायनों का प्रयोग : इसका उपयोग कृषि के उत्पादन में वद्धि के लिये किया जाता है।

(iii) फसल विविधता : HYV बीच फसलों को कम समय में पका देते हैं इसलिए किसानों ने कम समय में अधिक फसलों को बोया और उत्पादन बढ़ने लगा।

(iv) तकनीकीकरण : ट्रैक्टर तथा हार्वेस्टर पम्प का प्रयोग होने लगा।

(v) आधारभूत संरचना का विकास : यातायात, सिंचाई, खाद्यान भंडार, विपणन तथा ग्रामीण विद्युतीकरण से किसानों ने नई कृषि प्रणाली अपनाई।

(vi) कीमत लाभ : भूमि-सुधार ने निम्नतम कीमत प्रणाली (MSP) का अनुसंधान जिसमें किसानों को प्रोत्साहन मिला।

(vii) वित्तीय सहायता : किसानों के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने सहकारी बैंकों की स्थापना की तथा व्यापारिक बैंक को दिशा निर्देश दिए तथा राष्ट्रीय स्तरीय NABARD जैसी शीर्ष बैंक की स्थापना की जो गाँवों में किसानों को ऋण उपलब्ध कराने के लिए सहायता तथा दिशा-निर्देश देती है।

हरित क्रांति के प्रभाव

भारत में हरित क्रांति के परिमाणात्मक तथा रचनात्मक प्रभाव पड़े एक तरफ जहां नई तकनीक की वजह से कृषि-उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा वही क्वालिटी में परिवर्तन आया।

(i) उत्पादन में तीव्र वद्धि : हरित क्रांति से एक तरफ उत्पादन तेज गति से बढ़ा तथा हमारे आयात पर निर्भरता घट गई तथा देश खाद्यान में आत्मनिर्भर हो गया। सन् 1966 में भारत खाद्यान, आयात करने वाला दूसरा सबसे देश था वही 80 और 90 में मानसूनी खराबी से कम वर्षा और विभिन्न स्थानों पर बाढ़ की वजह से थोड़ा आयात करना पड़ा। भारत ने खाद्यान आयात नहीं किया फिर भी भारत हरित क्रांति के उत्पादन की भांति आयात नहीं रख पा रहा है।

(ii) उत्पादकता में सुधार : उत्पादकता में वद्धि से भारत का कृषि उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा, प्रारम्भ में गेहूँ और चावल की उत्पादकता बढ़ी लेकिन धीरे-धीरे अधिकतर फसलों की उत्पादकता बढ़ गई।

(iii) रोजगार में वद्धि : खेतों के तकनीकीकरण और अधिक फसल प्रणाली से किसानों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए इसके अलावा अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर भी उपलब्ध कराए जैसे विपणन आदि में।

(iv) खाद्यान कीमत स्थिरता : उत्पादन बढ़ने से व्यापार में अधिक खाद्यान की मात्रा आने लगी फलतः कीमत में स्थिरता आई।

(v) अन्य उद्योगों की स्थापना : कृषिगत आगतों को उपलब्ध कराने के लिए उद्योगों की स्थापना हुई जैसे रसायनों, ट्रेक्टर, फसल काटने के यंत्र आदि। कृषि के विपणन की व्यवस्था के लिए यातायात से लेकर खाद्यान भंडारण तक नये उद्योगों की स्थापना हुई।

प्रश्न

→ हरित क्रांति के प्रमुख घटक क्या हैं?

→ HYV का अर्थ क्या है?

→ कृर्षि की आधुनिक तकनीकी के लिए किसकी आवश्यकता है।

हरित क्रांति की समस्याएँ

हरित क्रांति से उत्पादकता बढ़ी तथा किसानों को अधिक प्रतिफल मिला जिसके कारण गाँवों में गरीबी कम हुई तथा आय भी बढ़ने लगी इससे व्यक्तिगत और परिणामस्वरूप असमानता भी बढ़ी है।

1. गाँवों में व्यक्तिगत असमानता गाँवों में अमीरों और गरीबों में समानता बढ़ी है क्योंकि–

(i) बड़े किसानों ने नई प्रणाली का अनुसरण किया क्योंकि बड़े फार्म में सिंचाई, उर्वरक, कीटनाशक, समाजिक, आर्थिक तथा वित्तीय सुविधाओं का प्रयोग आसान होता है इसलिए हरित क्रान्ति का फायदा बड़े किसानों को प्राप्त हुआ। छोटे किसानों के पास छोटे खेत थे और उन्होंने परम्परागत कृषि प्रणाली का सहारा लिया इसलिए हरित क्रांति का लाभ बड़े किसानों को अधिक मिला।

(ii) हरित क्रांति के लिए आगतो को ऊँची कीमत चुकानी पड़ती थी तथा उत्पादन कम कीमत पर बाजार में बेचना पड़ा इसलिए भूमिपतियों को ज्यादा लाभ मिला।

(iii) मशीनीकरण की वजह से अकुशल श्रमिकों के लिये अवसर कम हो गये जिससे आय असमानता और भी बढ़ गई।

2. क्षेत्रीय असमानता में बढ़ोतरी : हरित क्रांति केवल सिंचित और अधिक बारिश वाले क्षेत्रों में हुई जिसके फलस्वरूप असिंचित क्षेत्रों का अधिक विकास नहीं हुआ, HYV बीजों का प्रयोग केवल वहीं किया जा सकता था जहाँ सिंचाई, रसायन तथा उर्वरक का प्रयोग हो। सूखे स्थानों पर नई प्रणाली लागू नहीं हो पाई।

कुछ राज्य जैसे हरियाणा, पंजाब तथा पश्चिमी यू.पी. में लागू हुई क्योंकि यहां पर सिंचाई तथा अधारभूत संरचना की सुविधा थी।

3. पर्यावरण पतन : अधिक और गैरअनुपातिक रसायनों के उपयोग से पानी को प्रदूषित कर दिया तथा लाभदायक कीटों और वन्य जीवों को हानि पहुँचाई है। जमीन का अधिक दोहन करने से जमीन के उपरी तत्त्वों का नाश हो गया तथा भू-गर्भ पानी की मात्रा भी कम हो गई। कुछ फसलों पर निर्भरता आवश्यकता से अधिक रही और कीटनाशकों के अधिक विविधता से फसलों की नष्ट होने लगी इसकी यह समस्या जटिल हो गई क्योंकि अशिक्षित किसानों को नकदी फसलों की कुछ समझ ही नहीं थी।

4. कुछ फसलों तक सीमित : गेहूँ, चावल और बाजरा तक ही हरित क्रांति सीमित थी। नकदी फसलों जैसे तिलहन और जूट जैसे फसलों के HYV बीजों का विकास नहीं हुआ। खाद्यान फसलों बढ़ने लगी और नकदी फसलें का उत्पादन कम होने लगा।

मूल्यांकन : हरित क्रांति की मुख्य उपलब्धि थी कि भारत द्वारा खाद्यान सुरक्षा प्राप्त कर ली गई। एक वैज्ञानिक तरीके से उत्पादन और उत्पादकता दोनों बढ़ गये तथा गरीबों को अब कम कीमत पर खाद्यान मिलने लगा लेकिन क्षेत्रीय और आर्थिक असमानता भी बढ़ने लगा तथा पर्यावरण भी प्रभावित हुआ।

तकनीकी कला का भारतीय कृषि पर प्रभाव

निम्न कृषि उत्पादकता का मुख्य कारण असंतोषजनक कृषि तकनीकी, नए कृषि तकनीकी HYV बीजों के लिए उर्वरकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग जरूरी होता है नई तकनीकी HYV बीजों के साथ क्षति ज्यादा रहती है। भारत में केवल 64% क्षेत्र मानसून पर निर्भर है। सिंचित क्षेत्र पर केवल गेहूँ और चावल की खेती होती है।

इसलिए नई कृषि प्रणाली के लिए सिंचाई व्यवस्था जरूरी है ताकि इसे हर क्षेत्र और हर फसल पर लागू कर सके।

इसके अलावा अन्य कारण जो कि आधुनिक तकनीकी के कारण उत्पन्न होता है वह है तकनीकी सुधार जो धीरे-धीरे हो रहा है, इसके अलावा भूमि पर किसानों का अधिकार नही होने से उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिलता है। इसलिए भूमि के मालिकाना हक के लिए आधारभूत सुधार करना होगा ताकि नई कृषि प्रणाली का अनुसरण किया जा सके।

नई कृषि प्रणाली का प्रयोग कृषि उत्पादकता को बढ़ा देता है। फिर उत्पादन की वद्धि स्थिर नहीं है। नई कृषि तकनीकी का प्रयोग पानी से सम्बन्धित, पूर्ण सिंचित क्षेत्र में ही इसे अपनाया जा सकता है। हमें सरकारी वितरण प्रणाली की भी आवश्यकता है ताकि कीमत अस्थिरता से लड़ा जा सके।

भारतीय कृषि के वद्धि में संरचनात्मक तथा तकनीकीकरण का प्रमुख योगदान रहा है। केवल तकनीकीकरण से ही जब तक कि संरचनात्मक तथा आधारभूत संरचना का विकास नहीं होता, उत्पादकता में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। भूमिपति न चाहे तो किसानों की समस्याओं को सुलझाया नहीं जाता। भूमि सुधार में यह जरूरी है कि कृषि उत्पादन से बिचौलिये वर्ग को समाप्त करें तथा उसका वास्तविक हक जोतने वाले किसान को दें इसके अलावा आधुनिक कृषि के लिए वहत निवेश की आवश्यकता है। इसमें आसान-साख की व्यवस्था प्रमुख भूमिका निभा सकती है।

अन्त में निष्कर्ष यही निकलता है कि तकनीकी सुधार आधुनिक कृषि को आगत प्रदान करते हैं लेकिन संगठित और संरचनात्मक सुधार इसे पर्याप्त माहौल प्रदान करेंगे।

प्रश्न

→ हरित क्रांति के दौरान कृषि उत्पादन और उत्पादकता में वद्धि का स्व-मूल्यांकन कीजिए।

→ "हरित क्रांति ने उत्पादन का स्तर ऊँचा कर दिया तथा उसी समय क्षेत्रीय और आर्थिक विषमताएँ भी बढ़ी" मूल्यांकन कीजिए।

→ "कृषि वद्धि के लिए तकनीकी विकास आवश्यक है लेकिन पर्याप्त नहीं है" इस कथन पर अपने विचार लिखिए।

पाठ 4

भारत में कृषि विपणन और कीमत नीति

इस अध्याय को पढ़ने से आप निम्नलिखित समझ सकेंगे

- भारत में कृषि विपणन की संरचना
- कृषि सहकारिता
- कृषि का उम्दा व्यापार
- कृषि विपणन का आलोचनात्मक मूल्यांकन
- कृषि कीमत नीति के उद्देश्य और साधन
- भण्डारण
- कृषि कीमत नीति का मूल्यांकन

परिचय

कृषि विपणन, कुल विपणन का एक छोटा प्रतिरूप है इसमें वे सारी क्रियाएँ तथा नीतियों का अध्ययन किया जाता है जो कि किसानों तक पहुँचती हैं तथा किसानों द्वारा उत्पादित उत्पादों को बाजार तक ले जाती है। एक अनुकलतम विपणन हमेशा लागत को कम करता है तथा लाभ को अधिकतम करता है। इस प्रक्रिया में यह भी याद रखा जाता है कि किसानों को उचित प्रतिफल मिले साथ ही उपभोक्ताओं को कम कीमत पर वस्तुएँ मिले और मध्यम वर्ग आय का कुछ अंश भी बच जाए।

भारत में कृषि विपणन की संरचना : भारत में कृषि विपणन के अन्तर्गत कृषि विपणन सहकारी समिति, सार्वजनिक व्यापार और कृषि व्यापार नीति का समावेश है।

हम इनका अध्ययन निम्न अनुच्छेदों में करेंगे

(i) कृषि विपणन सहकारी समिति : सहकारी समितियों के सदस्य किसान होते हैं जो कि अपने अतिरेक उत्पादन को संस्थाओं में बेच देते हैं, यदि किसान अपने उत्पादन को समितियों को देते हैं तो समितियां किसानों को वित्तिय व्यवस्था उपलब्ध कराती हैं ताकि किसान अपनी गतिविधियां सुचारु-रूप से चला सकें। यह समितियां अपने सदस्यों तथा गैर-सदस्यों से भी कृषि उत्पादन को एकत्रित करती हैं। इन समितियों को बाजार की जानकारी होती हैं तथा अनुकुल समय आने पर बाजार में बेच देती है। जो कि बाजार स्थिति पर निर्भर है यदि उन्हें लगता है कि भविष्य में कीमत बढ़ सकती है तब ये इन्हें अपने पास संचित रखती हैं। सामान्यतः ये समितियाँ कई गाँवों में अपना अभियान चलाती है इसलिए इनकी गतिविधियाँ प्रभावपूर्ण तथा सफलतम होती हैं।

ये समितियाँ अपनी गतिविधियां अन्य क्षेत्रों में संचालित करती हैं जैसे भंडारणों का निर्माण, वित्तिय सहायता प्रदान करना, कृषि-उत्पादनों को परिष्कृत करना, आदि, कृषि सहकारी समितियाँ चार-स्तरीय हैं प्राथमिक सहकारी समितियाँ प्रारम्भ में, फिर जिले स्तर पर संघीय सहकारी समितियाँ फिर राज्य स्तरीय। राज्य विपणन सहकारी समितियाँ और अन्त में देश-स्तरीय भारत में राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (NAFED) एक उच्च-संस्था है।

सहकारी विपणन संस्थाओं के लाभ

कुछ महत्त्वपूर्ण लाभ निम्नलिखित हैं :

(i) विपणन समितियाँ एकत्रित-मोलभाव करती हैं। किसी एक किसान के पास मोलभाव की कम क्षमता होती है तथा उसे कृषि उत्पाद से अच्छी कीमत नहीं मिलती है लेकिन समितियाँ इस प्रणाली द्वारा बाजार से अच्छी कीमत प्राप्त करती हैं।

(ii) विपणन समितियाँ किसानों को आकस्मिक वित्त उपलब्ध कराती हैं ताकि वह बाजार से तुलनात्मक कीमत प्राप्त करने के लिए अपनी फसल को अपने पास रख सकें।

(iii) ये समितियाँ भंडारण की व्यवस्था किसानों को उपलब्ध कराती हैं। तथा फसल-बीमा की भी व्यवस्था कराती है ताकि किसानों की क्षति को कम किया जा सके।

(iv) ये समितियाँ किसानों को बढ़िया उत्पादन करने के लिये किसानों को प्रेरित करती हैं।

(v) ये समितियाँ दलालों को समाप्त करती हैं और किसानों को अधिकतम कीमत दिलाने की कोशिश करती हैं।

सहकारी विपणन का विकास

कृषि सहकारी विपणन के दौरान करीब 8 से 10 प्रतिशत तक अतिरेक कृषि-उत्पादन को एकत्रित किया जाता है। कुछ महत्त्वपूर्ण फसलो को ही ये समितियाँ एकत्रित करती हैं वे हैं खाद्यान्न, गन्ना, कपास, तिलहन, फल, सब्जियाँ आदि, इसकी परिस्थिति राज्य-राज्य में अलग-अलग हैं। महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक और तमिलनाडु में भारत की 80 प्रतिशत में कृषि उत्पादन का बाजारीकरण इन समितियों द्वारा किया जाता है। पंजाब, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में खाद्यान का 75 प्रतिशत व्यापार इन समितियों द्वारा किया जाता है। इस तरह महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश का 75 प्रतिशत गन्ना, महाराष्ट्र और गुजरात का 75 प्रतिशत कपास, का विपणन इन समितियों द्वारा किया जाता है।

भारत में प्राथमिक विपणन सहकारी समितियाँ 6000 है वहीं 160 केन्द्रीय सहकारी समितियाँ जिले स्तर पर हैं जो कि अधिकतर आस-पास की मंडी से संम्पर्क में है, राज्य स्तर पर 29 समितियाँ है। राष्ट्रीय स्तर पर, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC), तथा राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (NAFED) तथा इसके अलावा राष्ट्रीय तम्बाकू उत्पादन सहकारी संघ, आदिवासी सहकारी विपणन विकास संघ जैसी संस्थाएँ भारत में हैं।

भारत में सहकारी विपणन समितियों की वद्धि संतोषजनक रही है जिससे किसानों को अधिकतर सुविधाएँ मिलती हैं। किसान इन समितियों की सहायता से अंशदायी एजेन्टों (Commision Agents), वित्तिय व्यवस्था, बिना रोक-टोक व्यापार और व्यक्तिगत सेवाएँ इन एजेन्टों द्वारा की जाती हैं। राज्य स्तरीय नामांकित अधिकारी जो कि सचिव होते हैं तथा इनका राजनीतिकरण होने से यह समितियाँ असफल हो गईं।

(ii) विकसित बाजार : राज्य, किसानों के लिए बाजारों की व्यवस्था करते हैं, ताकि किसान आसानी से पूर्ण निर्धारित समय पर अपना उत्पादन बेच सके इसके लिए पूर्णतया पाबन्दियों के साथ बाजार की स्थापना की जाती है जहाँ बाजार समितियाँ उन पर नजर रखती हैं तथा यह भी निष्कर्ष निकालती हैं कि क्या यह बाजार राज्य कृषि उत्पादन विपणन कानून का अनुसरण करते हैं या नहीं।

विकसित बाजार की स्थापना की अवधारणा 1930s के शुरू हुई जिसका तीव्र विकास आजादी के बाद आया। ये संस्थायें, अप्रेल 1951 में 236 थे जो कि मार्च 2001 में 7,161 हो गये आज करीब 98 प्रतिशत का थोक व्यापार (wholesale) व्यापार इन बाजारों से होता है। देश में 27,294 ग्रामीण बाजार मार्च 2001 तक थे। लगभग 15 प्रतिशत व्यापार इनके द्वारा होता था (40I, 2001a), सभी राज्यों में सुधार एक जैसा नहीं है। प्रत्येक राज्य में आधारभूत संरचना और बाजार नीति जो कि विकसित बाजार द्वारा ली जाती है, एक जैसी नहीं है। इन बाजारों ने कुछ सीमा तक क्रेता और विक्रेताओं की समस्याओं का समाधान किया है लेकिन ग्रामीण बाजार और आदिवासी बाजारों का विकास अभी तक नहीं हो पाया है।

(iii) सार्वजनिक विपणन : सरकारी व्यापार में सरकार का उद्देश्य होता है कि क्रेता और विक्रेता का कल्याण अधिकतर हो, सरकार पूर्ण-निर्धारित कीमत पर विक्रेताओं से वस्तुएँ खरीदती है तथा तार्किक कीमत पर अपने उचित कीमत दुकानों (Fair Price Shops) से उपभोक्ताओं को उपलब्ध करवाती है।

यह कहा जा सकता है कि कीमत स्पष्टीकरण एक अच्छा-समझ तोहफा (Well Conceived Package) यदि कषि लागत और कीमत आयोग (CACP) के सुझाव के बाद यह सरकार तय करती है, किसानों से फसल किस कीमत पर ग्रहण की जायेगी। कीमत नीति के द्वारा कषि उत्पादन निम्नतम सहायता कीमत (MSP) पर अधिग्रहण [अधिग्रहण कीमत (Procurement Price) पर] एवं वितरण [तार्किक कीमत पर (Issue Bill) पर] निर्धारित होता है।

फसल प्राप्ति संस्था (Procurement Agencies), उचित-कीमत दुकान (Fair Price Shop) बफर स्टाक संचालन और आयात कीमत के मुख्य कारक हैं। लेकिन कीमत स्पष्टीकरण सफलता इतनी नहीं मिल पाई जितनी होनी चाहिए थी। अल्पकाल में कीमतों में अस्पष्टता पूर्ति में उठापटक से आती है। फसल की कीमत, फसल की बुआई पर अधिकतम होती है जबकि फसल की कटाई के समय निम्नतम होती है। फसल का अधिकतर हिस्सा किसानों द्वारा घटिया विक्रय (Distress Sale) से जाना जाता है। कुछ फसलों जैसे गेहूँ और चावल में उठापटक कम होता है क्योंकि उत्पादकर्ता अमीर होता है तथा वह बाजार से वित्तिय सहायता भी आसानी से प्राप्त कर सकता है। तथा वह उनका भंडारण भी आसानी से कर सकता है। (Registration 1947) गेहूँ और चावल की निम्नतम सहायता कीमत (MSP) पहले घोषित किया जाता है फलस्वरूप उनका उत्पादन भी अधिक होता है जिसे इनका संग्रहण भी हो सकता है। अब यदि निकास (off-take) कम होता है हमारी भंडारण क्षमता और बफर स्टॉक क्षमता से अधिक भर जाते हैं यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षो में हमारा बफर स्टॉक अधिक रहा है। इससे बफर स्टॉक की लागत क्रमशः बढ़ने लगती है और अधिक संग्रहण की क्षमता समाप्त हो जाती है।

उम्दा व्यापार (Future Trade)

फ्यूचर व्यापार से अधिक कीमत से होनी वाली उठापटक क्षति से बचा जाता है, हमारे यहां तीन स्तरीय नियामक संगठन है जोकि उम्दा व्यापार को नियंत्रित करता है। प्रारम्भिक स्तर पर आगामी बाजार आयोग (Forward Market Commission) है। जो कि वस्तु विनमय की प्रणाली को नियंत्रित करता है और उनका संविधान, सम्बन्धित कानूनों की कवायत करता है, उपभोक्ता मामलों का विभाग (Department of Consumer Affairs), उपभोक्ता मामलों का मंत्रालय (Ministry of Consumer Affairs), भोजन और सार्वजनिक वितरण भारत सरकार जो कि भविष्य के व्यापार पर निगाह रखते हैं।

1991 तक केवल 6 वस्तुओं के उम्दा व्यापार की अनुमति थी इसमें सुधार के लिए काबरा कमिटी (Kabra Committee) की स्थापना की जिसने 1994 में रिपोर्ट प्रस्तुत की तब से सरकार के उम्दा व्यापार के लिए उम्दा व्यापार को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कई कदम उठाए लेकिन सुधार की गति अभी धीमी है लेकिन तार्किक है। आज 81 वस्तुओं के उम्दा व्यापार की अनुमति की गई और 25 वस्तुएं विनिमय की हांलाकि सरकार 6 वस्तुओं को उम्दा व्यापार से हटा दिया जिसमें गेहूँ और चावल शामिल है। ताकि मुद्रास्फीति को कम किया जा सके।

वायदा व्यापार (Future Marketing) का परिणाम उल्लेखनीय है कुछ किसान वायदा कारोबार में वस्तु-विनिमय को समझ सके हैं। सामान्यतः, वस्तुएँ विनिमय में कुछ कमियाँ है जैसे आधारभूत संरचना, यातायात संगठन, प्रबन्ध और Spot बाजार और वित्तिय बाजार में कोई सम्बन्ध नहीं है। अधिकतर वस्तुओं का उम्दा कारोबार तथा उनके एजेन्टों की संख्या कम हो रही है। कम्प्यूटर संचालित ऑनलाइन व्यापार, भंडारण रसीद प्रक्रिया गवाह पूंजी (Guarantee Fund) और इलेक्ट्रॉनिक परिचालन और समाधान (Electronic Clearing house & Settlements) की प्रक्रिया अभी भारत में मजबूत नहीं है। इसमें सुधार के लिए वित्तिय व्यवस्था की कमी सबसे बड़ी समस्या है। 2008-09 के बजट में केन्द्र सरकार ने 12 प्रतिशत सेवा-शुल्क 2 प्रतिशत शिक्षा उपकर (Cell) तथा 17 रुपया एक रुपए के वस्तु विनिमय और 6 प्रतिशत विनिमय कर लागू किया, जिससे संभावना है कि भारत में कायदा कारोबार कम हो जाएगा, परन्तु बाजार भारत में अभी तक अल्पविकसित है। हमें यह तुरन्त समझने की जरूरत है कि वायदा कारोबार में हम किस प्रकार अपनी सुरक्षा कर सकते हैं। आधुनिक वायदा कारोबार के लिए भारतीय कृषि का संगठित होना जरूरी है। वायदा कारोबार अधिक मजबूत बनाने के लिए बैंक और FII अन्य संस्थाओं को इस दिशा में आना चाहिए।

भारत में कृषि विपणन की समस्याएँ : भारत में कृषि सुधार में कृषि विपणन भी सुधार की प्रक्रिया में है। फिर भी कुछ कमियाँ हैं–

(1) भंडारण की समस्या : भारत में अभी भंडारण की उचित व्यवस्था नहीं है ताकि किसान अपने उत्पादन कुछ समय के लिए रोक सके। इसके अलावा कृषि, भंडार गहों में नष्ट हो जाती है। इससे किसानों को बाजार से अपने फसलों की उचित कीमत नहीं मिल पाती है।

(2) यातायात की समस्या : भारत में अभी तक कई हजार गाँव सड़क से नहीं जुड़े है। या फिर गाँवों का मुख्य सड़कों से सम्पर्क नहीं है। इससे उनके लिए उत्पादन को बाजार ले जाना मुश्किल होता है।

(3) विकृत-बेचान (Distress Selling) की समस्या : गरीबी और ऋणग्रस्तता किसानों की फसल को रोकने की क्षमता कम कर देती है। किसानों के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी फसल को कम कीमत पर बाजार पूंजीपतियों के हवाले कर दें, जिससे जल्द से जल्द अपना कर्ज चुका सकें।

(4) आधारभूत संरचना की कमी तथा मंडियों में भ्रष्टाचार का बोलबाला : किसानों को अपनी फसल की सही कीमत मिलने के लिए जरूरी होता है कि वह अपनी फसल को सही कीमत पर बेचने के लिए उत्पादक संगठित हों क्योंकि एक तरफ मंडियाँ गाँवों से दूर हैं जहाँ भंडारण की व्यवस्था नहीं है इसलिए उनको पर्याप्त कीमत नहीं मिल पाती है। इसके अलावा बिचौलियै या दलाल उनसे अधिक अंश लेते हैं। इसके आलावा निम्न-स्तर-उत्पादन का हवाला देकर कुछ कटौतियाँ की जाती हैं जो कि गैर-कानूनी हैं।

(5) वायदा-बाजार से अनियमितता : कुल कृषि विपणन में वायदा कारोबार का आंशिक अंश है इसलिए जरूरी है कि कृषक समुदाय को इसके बारे में समुचित जानकारी दी जाए।

(6) बड़े स्तर पर कृषि-प्ररिस्करण की कमी : अल्प काल में विनिष्ट होने फसलों के लिए भारत में कृषकीय उत्पादन का परिष्करण का प्रतिशत बहुत कम है। अधिकतर कृषि उत्पादनों को कच्चा माल में बेचा जाता है जिनसे उन्हें कम कीमत प्राप्त होती है।

(7) सरकार द्वारा कृषि विपणन की दिशा में उठाए गए कदम

i) **ग्रेडिंग और मानकीयकरण (Standardisation) :** सरकार ने ग्रेडिंग केन्द्र की स्थापना की है जो कि कृषिकीय फसलों का ग्रेड और मानकीयकरण की प्रतीक लगती है जैसे AGAMARK।

ii) **भंडारण की व्यवस्था :** गाँवों में भी भंडारणों को स्थापित किया जाय ताकि किसान दूरह-विक्रय (Distress Sale) नहीं करें। केन्द्र और राज्य सरकारों के अलावा भारतीय खाद्य निगम (FCI) ने गोदामों और भंडार गहों की स्थापना की।

iii) **विपणन सर्वे :** किसानों को सूचना उपलब्ध कराने के लिए कृषकीय उत्पादों का सर्वे किया जाता है और समय पर प्रकाशित भी किया जाता है। सर्वे में यह भी विचार किया जाता है कि किसान किन समस्याओं का सामना करते हैं तथा इन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है। कृषि-उत्पादनों की कीमते सर्वे में प्रकाशित की जाती हैं और इन सूचनाओं को रेडियो, टी.वी. और प्रकाशित संस्थाओं द्वारा विकेंद्रित किया जाता है।

iv) **कृषि विपणन में सहकारी आन्दोलन :** सरकार ने कई-स्तरीय सहकारी समितियों की स्थापना की जो कि किसानों वित्तिय और विपणन सम्बन्धी सहायता उपलब्ध करवाती हैं। NAFED इसी स्तर की उच्च श्रेणी की संस्था है। इनके द्वारा धन और वित्त की व्यवस्था की जाती है। इन क्रमिकों को ट्रेनिंग भी दी जाती है।

v) **कृषि उत्पादनों को निर्यात में प्रोत्साहन :** हाल के वर्षो में कृषि उत्पादनों का निर्यात बढ़ा है। सरकार की निर्यात नीति ने इस दिशा में काफी कुछ किया है। इस सन्दर्भ में कृषि निर्यात जोस (AEZ) की स्थापना की गई।

vi) **विशेष बोर्डो की स्थापना :** सरकार ने कई वस्तुओं के बोर्ड बनाए हैं जैसे चावल, दाल, जूट आदि के बोर्ड जो कि इनके सन्दर्भ में नीतियां बनाते हैं। एक निर्यात-परिषद (Export Council) की स्थापना की गई जो कि निर्यात बढ़ाने के तरीके बताती है।

vii) **विकसित बाजारों की स्थापना :** सरकार ने कृषकीय उत्पादन बाजार कानून (Agricultural Produce Market Act) के अन्तर्गत विकसित बाजारों की स्थापना की है। इन बाजारों का प्रबन्ध एक समिति द्वारा होता है। जिसमें अलग विषयों के लोगों को रखा जाता है ताकि किसानों को उचित कीमत मिल सके।

उपाय जो करने चाहिए

(i) घरेलू बाजार का विश्व-बाजारों से सम्बन्ध करना : खाद्यानों का विभिन्न राज्यों से स्वतंत्र आवागमन होना चाहिए, कीमत, व्यापार, वितरण और कृषि पदार्थो के आवागमन में बाधा डालने वाले कानूनों को समाप्त किया जाना चाहिए।

भारत, विश्व व्यापार संगठन (WTO) का सदस्य है। सरकार को आयात और निर्यात से प्रतिबन्ध हटाना चाहिए जो कि कृषि व्यापार में बाधा डालते हैं। एक समय-अवधि में भारत को आयात-कर (Tariff) कम करना चाहिए, इनसे भारत का कृषिगत बाजार विश्व-बाजार से जुड़ जाएगा।

(ii) सहकारी विपणन समितियों को मजबूत करना : हांलाकि सरकारी विपणन समितियों द्वारा अभी पूर्णतया और सभी फसलों पर अधिपत्य नहीं बैठाया है। इसलिए यह जरूरी है कि सहकारी विपणन समितियाँ तेज गति से सही दिशा में आगे बढ़ें सहकारी समितियों को अन्य समितियों के साथ ताना-बाना बुनना चाहिए जो कि कृषि को साथ और आयमों पर व्यापार करती हैं। इसके लिए सही तरीका यह है कि सहकारी समितियाँ बहुकोणीय आयामों पर ध्यान केन्द्रित करें। इन समितियों को अपना भंडारण गहों का निर्माण करना चाहिए और अपनी भंडारण क्षमता बढ़ानी चाहिए उन्हें अपनी यातायात परिस्कृत गहों और संगठित बाजार अपने बनाने चाहिए इनसे इसकी निर्भरता अन्य लोगों पर घटेगी और अपने उपभोक्ताओं का साथ देना चाहिए।

(iii) संगठित बाजार को मजबूत बनाना : संगठित बाजारों के प्रबन्ध को कृषि उत्पादन विपणन समितियों (APML) की विशेष जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। यह परिहार्य है कि इन समितियों के उचित क्षमता का विकास चाहिए तथा प्रबन्धकीय क्षमता उदारीकृति तौर पर प्रतिस्पर्धी होनी चाहिए। बाजार समितियों के सदस्य मुख्य तौर पर उसी विषय के लोग होने चाहिए, लेकिन सदस्यों की संख्या सामान्य बाजार के अनुसार पर्याप्त नही है। इन बाजारों को बढ़ाना चाहिए, गांवों में समय-समय पर संगठित बाजार लगाने चाहिए जिसमें पर्याप्त आधारभूत सुविधाएँ होने चाहिए तथा विभिन्न बाजारों का आपस में सम्पर्क होना चाहिए।

(iv) कीमत स्पष्टीकरण नीति का पुनर्गठन : यह दष्टिकोण कि किसानों को उत्पादनों की उचित कीमत मिले तथा उपभोक्ताओं को इस कीमत पर कि वे खरीद सकें खाद्यान उपलब्ध कराने के कृषि उत्पादन बचत का निर्विवाद वद्धि होना

आवश्यक है। कृषि व्यापार के सारे अवांछनीय नियन्त्रण समाप्त किए जाने चाहिए, संग्रहण, भंडारण और वितरण को पूर्णतया व्यापारिक तरीके से अनुकूलतम नियम से चलाना चाहिए।

(v) वस्तु वायदा बाजार को मजबूत करना : वायदा कारोबार को मजबूत बनाने के लिए वस्तु-विनिमय को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाना चाहिए। इसकी नियामक और नियन्त्रण प्रक्रिया को सुलभ बनाना चाहिए, (Clearhouse) निकासी-गह को आध ुनिक बनाना चाहिए, प्रशिक्षण प्रणाली को विकसित करना चाहिए, तथा एक मजबूत वायदा कारोबार को कानून के दायरे में लाना चाहिए।

(vi) सीधा विपणन प्रणाली को मजबूत करना (Direct Marketing) : प्रत्यक्ष विपणन किसानों के लिए लाभदायक है साथ ही उपभोक्ताओं को भी फायदा मिलेगा, किसान उपभोक्ताओं की विशेष आवश्यकताओं को संतुष्ट करेंगे, प्रत्यक्ष से यातायात खर्च और अन्य खर्च कम हो जाऐंगे। विपणन कृषि उत्पादन विपणन कानून के दायरे से बाहर होना चाहिए तथा इसका नियन्त्रण व्यावसायिक संस्थाओं के पास होना चाहिए जैसे बड़े विक्रेता, व्यापार संघ, NGO's या SHG।

(vii) यातायात संरचना में सुधार : भारत की परम्परागत यातायात व्यवस्था को बदलना चाहिए। भारत में रोड, रेल और जलमार्ग को मजबूत करना चाहिए।

(viii) भंडारण क्षमता को बढ़ाना चाहिए : निजी क्षेत्रों की भंडारण गहों और संग्रहण की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए, निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहन देना चाहिए, गांवों में गोदाम बनाने की विकेन्द्रित व्यवस्था को मजबूत करना चाहिए, गाँव, पंचायत, सहकारिता, SHGs, किसान संगठनों को इसमें अपने लाभ बढ़ाने चाहिए, शीघ्र बर्बाद होने वाली फसलों जैसे फल, फूल और सब्जियों के लिए शीत-भंडारों की श्रंखला होनी चाहिए, जहाँ पर की कूलिज, ग्रेडिंग, पैकेजिंग, शीत गह और फ्रिज व्यवस्था हो।

(ix) परिष्करण, ग्रेडिंग और पैकेजिंग की व्यवस्था : आय के घेरे में उचित और मजबूत, ग्रेडिंग और पैकेजिंग, प्राथमिक वस्तुओं का अच्छी तरीके से हो जिस पर हमें ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। यह व्यवस्था में बाजारों के अलावा गाँवों में भी करनी चाहिए जहाँ पर यह वस्तुएँ पैदा होती हैं। कृषकों को अपने उत्पादन को बाजार में बेचने से पूर्व उन्हें यह शिक्षा दी जाने चाहिए कि वे उनका ग्रेडिंग और पैकेजिंग कराएं, विश्व के बदलते परिवेश में पैकेजिंग की नई तकनीक भी उपलब्ध करवानी चाहिए जैसे चार के पैक में (Tetra Packs), पुड़ियाँ (Pouches) आदि।

(x) विपणन के लिए साख की व्यवस्था : संस्थागत वित्तिय संस्थानों के द्वारा विपणन सम्बन्धी कार्यों के लिये साख की व्यवस्था को अधिक सुद्धढ़ करना चाहिये वर्तमान नीति के अंर्तगत संस्थागत वित्तिय सुविधाएँ मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं को दी जाती है। नीति व्यापारियो को वित्त की सुविधा अत्यधिक सीमित है।

(xi) कृषि विपणन शोध को बढ़ाना : कृषि-व्यापार प्रबन्ध, कृषि-कटाई पश्चात् प्रबन्ध (Post-harvest Management), ग्रेडिंग, मानकीयकरण (Standarisation), गुणात्मकता, निर्यात प्रोत्साहन और सूचना तकनीकी आदि में कृषिगत विपणन से सम्बन्धित शोध को बढ़ावा देना चाहिए, कृषिगत शोध संस्थान और विश्वविद्यालय और भी ज्यादा मजबूत किया जाना चाहिए जिससे कि विपणन को अधिक सुचारू बनाने के लिए शोध किया जा सके। बाजार की संस्थाओं में इससे संबंधित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, सार्वजनिक और निजी संस्थाओं को जो कि विपणन में लगे हैं, को दक्ष किया जाना चाहिए, सेमीनार तथा वर्कशॉप (Workshop) का समय-समय पर आयोजन करना चाहिए।

मुल्यांकन

आज का कृषि विपणन विकट परिस्थिति में खड़ा है किसानों को उनके आवश्यकतानुसार सुविधाएँ दी जानी चाहिए। एक पूर्ण विपणन व्यवस्था उपभोक्ता और उत्पादकता दोनों का कल्याण बढ़ा सकती है। इसके सार्वजनिक निवेश करने की आवश्यकता है। इसके लिए आधारभूत ढ़ांचे में बदलाव की आवश्यकता है तथा परम्परागत विपणन व्यवस्था को उन्नत करना चाहिए।

अवधारणात्मक प्रश्न

→ भारत में कृषि-विपणन के औजार क्या हैं?

→ भारत में कृषि सहकारिता किन समस्याओं का सामना कर रही है।

→ कृषि-उत्पादों में वायदा कानून का लघु लेख लिखिए।

कृषि-कीमत नीति

कृषि कीमत से उत्पादनकर्त्ता और उपभोक्ताओं पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह कीमत प्रणाली एक तरफ उत्पादन को प्रोत्साहन प्रदान करती है वही कृषि उत्पादों की बाजारीकृत बचत को एकत्रित करने की भूमिका निभाती है वही यह संसाधनों के बंटवारे को भी प्रभावित करती है।

भारत में कृषि कीमत प्रणाली की प्रकृति : भारत में कृषिगत पदार्थों की कीमतों में पंचवर्षीय योजनओं से पहले जबरदस्त उठापटक देखी गई लेकिन 1991 के बाद इनकी कीमतें धीरे-धीरे ऊपर बढ़ रही है, कीमतों में अस्थिरता निम्न कारणों से हो रही है–

1. वर्षा पर निर्भरता : भारत का कृषिगत उत्पादन प्रकृति पर निर्भर करता है। अच्छा मानसून उत्पादन को बड़ा देता है और कम वर्षा या बाढ़ की स्थिति में फसलें बर्बाद हो जाती हैं, जो कि कृषि-उत्पादों पर विपरीत प्रभाव छोड़ती है। अस्थिर प्राकृतिक परिस्थितियों से कृषिगत उत्पादन की मात्रा में असमान्य परिवर्तन देखने को मिलता है। उत्पादन की मात्रा अस्थिरता से इनकी कीमतों में भी अस्थिरता रहती है।

2. कृषिगत उत्पादनों की मांग कीमत बेलोचदार होती है : अर्थात कृषिगत वस्तुओं की मांग कीमत में परिवर्तन की कुछ सीमा तक प्रभावी है। अधिक उत्पादन से कीमत कम हो जाती है लेकिन मांग अधिक नहीं बढ़ती है। इसी तरह अल्प-उत्पादन में कीमतें अचानक बढ़ जाती है लेकिन मांग वही रहती है।

3. कृषिगत कीमत प्रणाली के उद्देश्य : कृषिगत पदार्थों की कीमतों का स्थिर होना आवश्यक है क्योंकि कीमतें आम आदमी की क्रय-क्षमता को प्रभावित करती हैं। तथा आगतों की कीमतें औद्योगिक व्यक्तियों को उपभोक्ताओं की क्रय क्षमता कम होने से औद्योगिक उत्पादनों की मांग भी घटने लगेगी। भारत में कृषि-कीमत प्रणाली के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

- कृषि में अधिक निवेश और उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिये वस्तुओं की कीमतों का पूर्वनिर्धारण करना।
- कीमत इस प्रकार निर्धारण करना कि किसानों पर कहीं विपरित प्रभाव न पड़े।
- कीमतें इतनी होनी चाहिए कि कृषिगत और गैर-कृषिगत वस्तुओं में व्यापारिक सम्बन्ध बने रहे और संबंध खराब नहीं हाने चाहिए।
- कीमतें इस तरह होनी चाहिए कि हमें सभी फसलों पर पर्याप्त अनुपात मिल सके।

सैद्धान्तिक रूप में कृषि-कीमत निति (APP) कीमत निर्धारण करने से पहले विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करती है जैसे वस्तुओं की गुणवत्ता और वद्धि दर, एक फसलों का तार्किक अनुपात और कृषि -क्षेत्र में इतना संसाधनों का बंटवारा सुनिश्चित करना, पूंजी निर्माण ओर अन्त-र्क्षेत्रीय व्यापार।

भारत में कृषि-कीमत नीति के प्रमुख औजार (APP) :

APP के निम्नलिखित तत्त्व हैं :

(i) निम्नतम सहायता मूल्य [Minimum Support Price MSP)] और संग्रहण कीमत (Procurement Price)

(ii) बफर स्टॉक (Buffer Stock)

(1) MSP और संग्रहण कीमत : कीमत सहायता नीति सरकार द्वारा किसानों को यह सुनिश्चित करवाना है कि उन्हें एक निश्चित कीमत अवश्य प्राप्त होगी यदि मानसून अच्छा होता है तब फसल ज्यादा होगी और बाजार-कीमत कम होने लगती है इस परिस्थिति में सरकार किसानों को MSP द्वारा एक विशेष कीमत अवश्य उपलब्ध, करवाती है। MSP में किसानों की लागत के अलावा इसके कुछ लाभ भी शामिल हैं। हर वर्ष MSP की घोषणा सरकार CACP की सुझावों के बाद करती है। CACP, कृषिगत लागत और कीमत आयोग भारत सरकार की स्वतंत्र संस्था है जो सरकार को सतत MSP के लिए सलाह देती है। संग्रहण कीमत वह कीमत है जिस पर भारत सरकार रबी और खरीफ फसलों के उत्पादो को सार्वजनिक संस्थाओं जैसे कि Food Corporation of India (FCI) के द्वारा खरीदती है तथा खरीदी हुए उत्पादों का वितरण सार्वजनिक वितरण प्रणाली के द्वारा करती है। सामान्यता संग्रहण कीमत बाजार कीमत से कम होती है तथा MSP से ज्यादा होती है।

CACP द्वारा कीमत सुझाव से पहले यह संस्था इस वस्तुओं से सम्बन्धित अर्थव्यवस्था का गहन अध्ययन करती है। यह भी ध्यान में रखती है कि किसी फसल की कीमत पूरी अर्थव्यवस्था के ढांचे को प्रभावित न करे तथा विशेष तौर पर, जीवन स्तर, मजदूरी, औद्योगिक लागत आदि को प्रभावित न करे।

इस कीमत प्रणाली में यह ध्यान में रखा जाता है कि किसान को लागत के साथ अन्य प्रोत्साहन भी मिले जिससे कि कृषि में निवेश कम नहीं हो। MSP की घोषणा फसल-बुवाई के समय की जाती है जो कि लागत से ज्यादा होती है। कई वर्षों से MSP लगातार बढ़ रहा है। सारणी 1 में 1980 से MSP को दर्शाया गया है।

सारणी 1 : निम्नत्तम कीमत/संग्रहण कीमत गेहूं और चावल के लिए

(Rs. Per Quintal)

फसल वर्ष	गेहूँ	चावल (सारी नस्लें)
1980-81	117	105
1990-91	225	205
1995-96	380	360
1999-00	580	490
2000-01	610	510
2001-02	620	530
2002-03	630	530
2003-04	640	550
2004-05	640	590
2005-06	650	600
2006-07	750	610

(ii) बफर स्टॉक और सार्वजनिक वितरण प्रणाली : भारत में बफर स्टाक का संचालन कृषि-कीमत के साथ जुड़ा है। इनका प्रयोग फसलों की कीमतों में अस्थिरता को कम करने के लिए किया जाता है। बफर स्टॉक अर्थव्यवस्था में कीमतों की स्पष्टता प्रदान करता है। बफर स्टॉक नीति में सरकार घरेलू बाजार से अपने बफर स्टॉक भर देती है, तब कीमतें घटती हैं इसके विपरीत जब कीमतें बढ़ने पर बफर स्टॉक में से पुर्ति शुरू कर देती है। सरकार द्वारा पूर्ति करने से बाजार में कीमत सकारात्मक रूप से प्रभावित होती है।

बाजार कीमतें कम होने पर सरकार MSP या फिर संग्रहण कीमतों पर खुले बाजार से कृषि उत्पादनों को खरीदती है ताकि कीमतें और नीचे नहीं गिरें जिससे किसान दुखद बेचान (Distress Sale) नहीं करे।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) के द्वारा सरकार खाद्य और अखाद्य कृषिगत उत्पादनों को समाज के कमजोर वर्गों को कम कीमत पर उपलब्ध करवाती है। वर्तमान में PDS के पास 350000 से भी अधिक दुकानें (Fair Price Shops) हैं। जो कि राज्य सरकार द्वारा चलाई जाती हैं। जहां PDS से एक तरफ गरीब लोगों को अनाज उपलब्ध करवाया जाता है वही दूसरी तरफ सामान्य उपभोक्ता कीमत को तार्किक रखा जाता है, FCI, PDS के लिए सारा खाद्य अपने पास सुरक्षित रखती है। यह निगम एक तरफ किसानों को अपने संग्रहण प्रक्रिया द्वारा उचित कीमत प्रदान करता है और ऊँची बाजार कीमत को बढ़ने से भी रोकता है।

सूखे जैसी आपातकालीन परिस्थितियों से निपटने के लिए पर्याप्त बफर स्टॉक होना चाहिए ताकि कृषि-पदार्थों की कीमतें नहीं बढ़े सरकार ने बफर स्टॉक की सीमा को अच्छी तरीके से परिभाषित कर रखा है, हाल के वर्षों में विशेष तौर पर 2002 और 2003 में खाद्यानों का संग्रहण काफी अधिक हुआ जो कि सरकार द्वारा प्रतिपादित नियमों से काफी ज्यादा है। दूसरी तरफ अक्टूबर 2003 से बफर स्टॉक खाली हो रहा है। वर्ष 2005 और 2006 में बफर स्टॉक सामान्य से कम था।

कीमत नीति का विश्लेषण : कीमत नीति एक औजार है जिससे कृषिगत पदार्थों की कीमत सरलीकरण का वातावरण बनाया जाता है। उन्हें प्रोत्साहित भी किया जाता है ताकि किसान आधुनिक तकनीक से अधिक खाद्यानों का उत्पादन करें। अनुमानित खाद्यान का सरकार द्वारा वितरण समाज के कमजोर तबके को भोजन की उपलबधता सुनिश्चित कराता है तथा कीमत नीति और आगत/भोजन अनुदान का बंटवारा के समाज के अधिकतर मजबूत तबके द्वारा किया जाता है फिर भी वर्तमान की कीमत नीति में कुछ कमियाँ है जो कि निम्नलिखित हैं –

(i) जो फसलें गुणात्मक रूप से अच्छी हैं उन्हें अच्छी कीमत भी मिलनी चाहिए तथा हमें उन फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देना चाहिए जो कि विश्वस्तर पर तुलनात्मक सपोषण में श्रेष्ठ हो जिसका हमारी कीमत प्रणाली में कभी ध्यान नहीं दिया गया।

(ii) पिछले कुछ वर्षों में, MSP के निर्धारण में विवेकशीलता नहीं झलकती है क्योंकि जहाँ एक तरफ अत्यधिक स्टॉक का संग्रहण हुआ है। वहीं खाद्यानों की लागत भी बढ़ी है, विशेषतौर पर गेहूँ और चावल के सन्दर्भ में कुछ वर्षों में सरकार गेहूँ और चावल कीमतें CACP के सुझावों से ज्यादा घोषणा करती है।

(iii) कुछ नये राज्यों में किसान अपनी फसल की निम्नतम कीमत (MSP) नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं क्योंकि कुछ राज्य सरकार की एजेन्सियाँ और FCI इन राज्यों में अपना संग्रहण अभियान नहीं चलाती हैं। सामान्यतः FCI कुछ राज्यों में बड़े स्तर पर अभियान चलाती है जैसे पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश।

मूल्यांकन : कृषिगत-कीमत नीति में सरकार किसानों को कीमत प्रोत्साहन देती है ताकि किसानों को उचित प्रतिफल सुनिश्चित कर सके तथा देश में खाद्यान उत्पादन भी बढ़े। कुछ गैर-कीमत साधन जैसे अनुकूल तकनीक, वित्तीय आगत, भूमि सुधार, दक्ष मानवीय संसाधन व सभी महत्त्वपूर्ण साधन है जिनसे कृषि उत्पादकों की वद्धि और उनकी उत्पादकता भी बढ़ सकती है। जिन राज्यों के पास संसाधनों की कमी है उन्हें अपने गावों में सामाजिक और आर्थिक ढ़ांचों को मजबूत करना चाहिए न कि वे समाज को अनुदानित कृषिगत आगत प्रदान करें कीमत प्रणाली एक आशान्वित प्रभाव उत्पादकता पर नहीं छोड़ सकती यदि आधारभूत संरचना कमजोर है।

अवधारणात्मक प्रश्न

→ भारत में कृषि कीमत के पीछे तर्क क्या है?

→ MSP और संग्रहण कीमत में विभेद कीजिए।

→ कृषि कीमत नीति के भारत में औजार क्या हैं?

→ APP का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

पाठ 5

भारत में कृषि वित्त

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात आप समझेंगे कि–

- भारत में कृषि वित्त के साधन व पद्धति।
- भारतीय कृषि वित्त की संस्थागत संरचना।
- संस्थागत कृषि वित्त का मूल्यांकन।
- कृषि वित्त सुधारने के लिए सुझाव।
- सरकारी उपाय।

प्रस्तावना :

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लगभग 2/3 जनता कृषि पर निर्भर है। कृषि क्षेत्र की राष्ट्रीय आय में भागीदारी लगभग 19% है। कृषि में वद्धि के लिए वित्त की उपलब्धि एक महत्त्वपूर्ण कारक है। कृषि क्षेत्र को उपलब्ध वित्त न केवल कम दरों पर उपलब्ध हो बल्कि समय पर तथा उचित मात्रा में भी उपलब्ध होना चाहिए। इसके लिए सरकार ने समय-समय पर नीतियाँ बनायी हैं। क्योंकि ग्रामीण भारत में ज्यादातर लोग गरीब है, उनकी आय कम है, इसलिए उनकी बचतें कम होती हैं। बचत कम होने के कारण, उनके पास कृषि में निवेश के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हो पाते हैं। इसलिए ग्रामीण कुशल वित्त व्यवस्था का होना एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। संस्थागत वित्त व्यवस्था, ग्रामीण भारत में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह किसानों को साहूकारों से मुक्त कराती है तथा कम दर तथा समय पर ऋण उपलब्ध कराती है। ग्रामीण वित्त व्यवस्था में संस्थागत वित्त व्यवस्था का महत्त्व उदारीकरण के बाद और भी ज्यादा बढ़ गया है। भारत में संस्थागत वित्त प्रदान करने के लिए बहु-एजेंसी व्यवस्था का सहारा लिया गया जिसमें मुख्यतः को-अपरेटिव बैंक, व्यवसायिक बैंक तथा ग्रामीण बैंक प्रमुख हैं।

कृषि वित्त के प्रकार : कृषि वित्त को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है–

1. समय के अनुसार

(i) लघु-अवधि के लिए : यह वित्त कृषिकों की लघु-काल की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रदान किया जाता है। ये ऋण केवल फसल उठाने तक होता है तथा उसके बाद वापस करना होता है। इस प्रकार के ऋण का मुख्य उपयोग बीज खरीदने, उर्वरक खरीदने तथा दूसरे खर्चों को पूरा करने में होता है।

(ii) मध्यम-अवधि के लिए : यह ऋण 5 साल तक के लिए दिया जाता है। इसका उद्देश्य भूमि सुधार करने के लिए, कृषि मशीन व उपकरण खरीदने के लिए, ट्यूबवैल लगाने के लिए आदि होता है।

(iii) दीर्घ-अवधि : यह ऋण 5 साल से ज्यादा अवधि के लिए दिया जाता है।

2. उद्देश्य के अनुसार

(i) उत्पादक : इस प्रकार का ऋण उत्पादन बढ़ाने हेतु दिया जाता है तथा इसका आर्थिक आधार रूप है जैसे ट्रैक्टर, बीज, भूमि आदि खरीदने के लिए।

(ii) अनुत्पादक : अनुत्पादक ऋण का उपयोग उत्पादन बढ़ाने में न होकर, निजी उपभोग में किया जाता है। यह ऋण अनुत्पादक होता है क्योंकि यह शादी, सामाजिक व धार्मिक कार्यक्रमों पर खर्च कर दिया जाता है।

भारत में कृषि वित्त व स्रोत : भारत में कृषि वित्त के मुख्यतः दो स्रोत हैं।

(i) असंस्थागत

(ii) संस्थागत

1. असंस्थागत वित्त :

भारत में ग्रामीण वित्त व्यवस्था में असंस्थागत वित्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। असंस्थागत ऋणदाता द्वारा ऋण उच्च ब्याज दर पर दिया जाता है। भूमि तथा दूसरी सम्पत्ति को गिरवी रखा जाता है। भारत में कुल वित्त का लगभग 40 प्रतिशत

अंसस्थागत वित्त है। असंस्थागत वित्त के महत्त्वपूर्ण स्रोत निम्न हैं –

(i) साहूकार : ग्रामीण भारत में साहूकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये ग्रामीण वित्त में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साहूकार ऋण उच्च ब्याज दर पर उपलब्ध कराते हैं तथा सम्पत्ति आदि को गिरवी रख लेते हैं।

(ii) दूसरे निजी स्रोत :

(a) व्यापारी, जमींदार तथा कमीशन एजेन्ट।

(b) सम्बन्धियों से ऋण : इस तरह का ऋण निजी खर्चों को पूरा करने के लिए किया जाता है।

संस्थागत स्रोत : कृषि वित्त का कृषि उत्पादकता से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। यदि वित्त उचित मात्रा में व समय पर उपलब्ध हो तो कृषि उत्पादकता में वद्धि होती है। इस बात को ध्यान में रखकर भारत में कृषि वित्त के संस्थानीकरण की दशा में प्रयास किए गये हैं जिससे कि कृषि के लिए उचित मात्रा में तथा समय पर, कम ब्याज दर पर वित्त उपलब्ध हो सके। छोटे व सीमान्त किसानों तथा समाज के अन्य दलित वर्ग को संस्थागत ऋण उपलब्ध कराकर, आधुनिक तकनीकी को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। भारत में ग्रामीण वित्त की समस्याओं का ध्यान में रखते हुये, वर्ष 1982 में नाबार्ड की स्थापना की गई। यद्यपि यह किसानों को सीधा ऋण उपलब्ध नहीं कराती है। यह ग्रामीण वित्त संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करती है जो किसानों को ऋण प्रदान करते हैं। इस संस्थाओं को मुख्यतः निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है, (a) ग्रामीण को-ओपरेटिव बैंक (b) व्यवसायिक बैंक (c) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

(a) **ग्रामीण को-ओपरेटिव बैंक** : भारत में ग्रामीण को-ओपरेटिव बैंक सबसे पुरानी तथा सबसे वहद संस्था है। इन ग्रामीण को-ओपरेटिव बैंकों ने, ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों को साहूकारों के शोषण से मुक्त कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है। ग्रामीण को-ओपरेटिव व्यवस्था को लघु-अवधि वित्त तथा दीर्धावधि वित्त, को-ओपरेटिव में विभाजित किया जा सकता है।

लघु अवधि को-ओपरेटिव, लघु अवधि के लिए ऋण प्रदान करता है तथा ये मुख्यतः तीन प्रकार की होती है –

(i) **प्राथमिक कृषि वित्त सोसाईटी** : यह ग्राम स्तर पर संगठित की जाती है। ये केवल उत्पादक कार्यों के लिए ही ऋण उपलब्ध कराती है। प्राथमिक कृषि वित्त सोसाईटी का मुख्य उद्देश्य पूँजी इकट्ठा करना तथा अपने सदस्यों को कम दर पर आवश्यक ऋण उपलब्ध कराना है। भारत में 95% ग्रामों तक प्राथमिक कृषि वित्त सोसाईटी की पहुँच है।

(ii) **जिला केन्द्रीय को-ओपरेटिव बैंक ऋण** : ये जिला स्तर पर संगठित की जाती है। प्राथमिक कृषि वित्त सोसाइटी, केन्द्रीय को-ओपरेटिव बैंक से सम्बन्धित होती है। केन्द्रीय को-ओपरेटिव बैंक, प्राथमिक कृषि वित्त सोसाइटी की क्रियाविधियों को समन्वित करती है। केन्द्रीय को-ओपरेटिव बैंक, प्राथमिक कृषि वित्त सोसाइटी को ऋण उपलब्ध कराती है।

(iii) **राज्य को-ओपरेटिव बैंक ऋण** : केन्द्रीय बैंक, राज्य को-ओपरेटिव बैंक से सम्बन्धित रहती है। जैसे केन्द्रीय बैंक, प्राथमिक कृषि वित्त सोसाइटी का समन्वयन करती है उसी तरह राज्य को-ओपरेटिव बैंक, केन्द्रीय बैंक की क्रिया-विधियों का नियन्त्रित व समन्वित करती है।

(iv) **दीर्घावधि को-ओपरेटिव बैंक** : ये सोसाइटी किसानों की दीर्घकालीन वित्त आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। ये दो स्तरों पर संगठित है।

(i) प्राथमिक कृषि व ग्रामीण विकास को-ओपरेटिव बैंक।

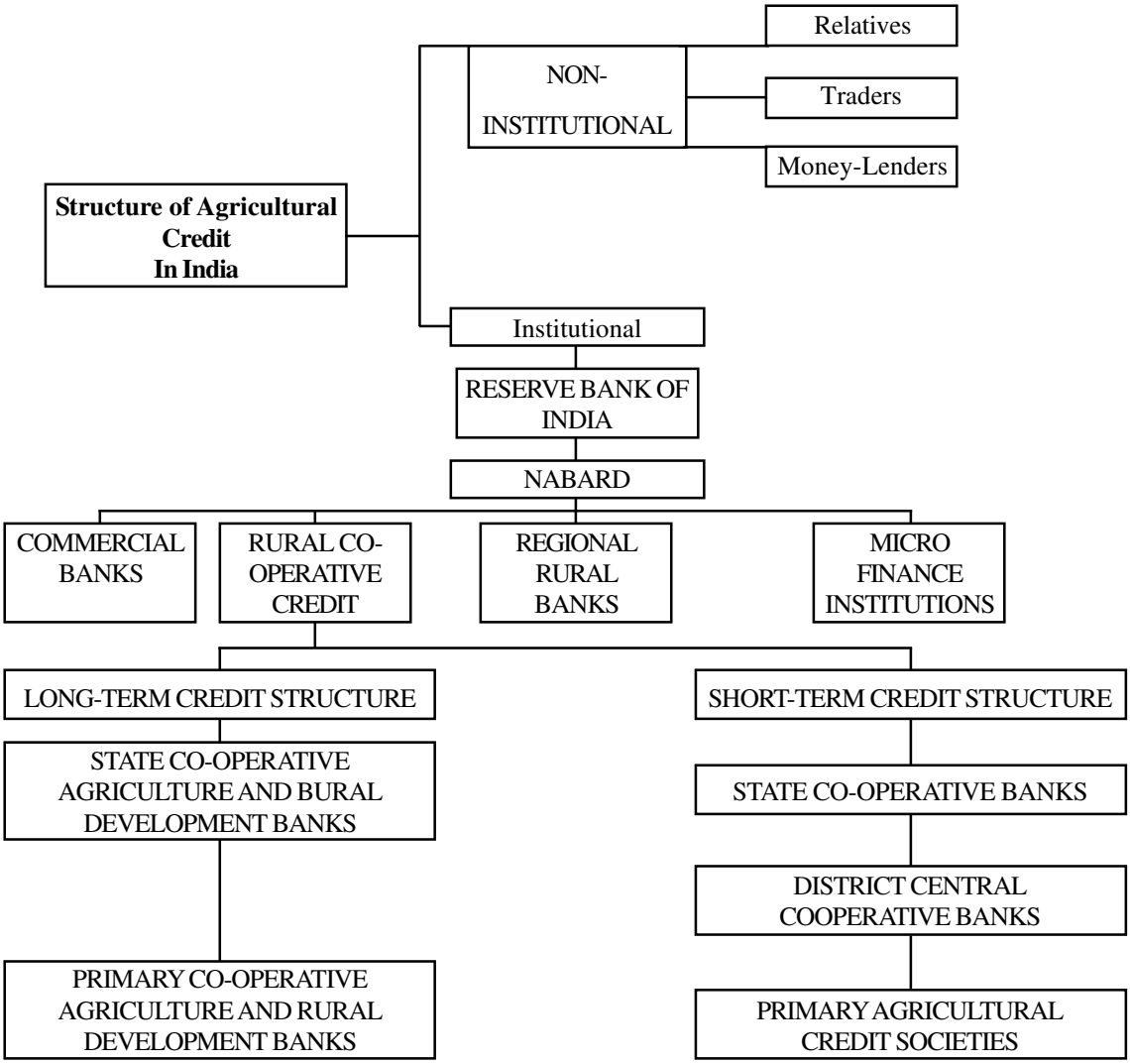
(ii) राज्य कृषि व ग्रामीण विकास को-ओपरेटिव बैंक।

(b) **व्यवासायिक बैंक :** व्यावसायिक बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी शाखाएँ स्थापित करके ऋण प्रदान करती है। 1969 तक व्यावसायिक बैंक की ग्रामीण ऋण में भागीदारी कम थी। 1969 के पश्चात् बहु–ऐजन्सी व्यवस्था अपनायी गई। इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत ग्रामीण ऋण में, व्यावसायिक बैंकों की भूमिका में वद्धि की गई। जिससे कि वे ग्रामीण क्षेत्र में ऋण उपलब्ध करा सकें। 1969 में 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इसके बाद 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। व्यावसायिक बैंकों को ग्रामीण ऋण प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात्, ग्रामीण क्षेत्रों में, बैंक शाखाओं का विस्तार हुआ है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात्, ग्रामीण ऋण में, व्यावसायिक बैंकों की भागीदारी लगातार बढ़ी है। लीड बैंक कार्यक्रम (Lead Bank scheme) के तहत, व्यावसायिक बैंकों द्वारा अपने कुल 40% Priority sector ऋण में से 18% प्रतिशत ऋण कृषि क्षेत्र को देना निर्धारित कर दिया गया। व्यावसायिक बैंक द्वारा ग्रामीण ऋण में भागीदार 1980 के अन्त तक लगातार बढ़ती रही। परन्तु 1980 के दशक में सरकार द्वारा किसानों के ऋण मांफ कर दिये गऐ जिससे

बैंकों की लाभदायकता कम हो गयी। 1991 के पश्चात् वित्तीय उदारीकरण के कारण बैंक की स्थिति और भी ज्यादा विषम हो गई है। जिसके कारण बैंक द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों को दी जानी वाली छोटी ऋणों में कमी आयी है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक : क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एक्ट 1976 के अन्तर्गत 1976 में की गई थी। जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण गरीबों की आवश्यकता को पूरा करना था। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना विशेष उद्देश्य के लिए की गई थी। 1975 से 1987 के मध्य देश में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुल शाखाऐं 14000 है। संस्थाओं के एकीकरण के कारण क्षेत्रीय-ग्रामीण बैंक की संख्या 196 से घटकर 31 मार्च 2006 को घटकर 133 हो गई थी जो पुनः 30 अप्रेल 2007 को घटकर 96 रह गयी। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 525 जिलों में फैली हुयी है। क्योंकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक लगभग सभी जिलों में है। अतः यह ग्रामीण व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण भाग है। यह इससे सिद्ध होती है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएँ, व्यावसायिक बैकों की कुल शाखाओं के 43% प्रतिशत के बराबर हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की बहुत सी शाखाएँ, उन क्षेत्रों में खोली गई जहाँ बैंकिंग सुविधाऐं उपलब्ध नहीं थी। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक मुख्यतः छोटे व सीमान्त किसानों, भूमिहीन मजदूरों, ग्रामीण कारीगर, छोटे-व्यापारी आदि को ऋण प्रदान कराती है। यद्यपि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, ग्रामीण ऋण व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण भाग है फिर भी इनका कुल ग्रामीण ऋण में हिस्सा बहुत कम है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हाँनि में चलते हैं इसलिए हाल के वर्षो में, सरकार ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की हालत सुधारने के लिए, बहुत से प्रयास किये हैं। इस बात के प्रयास किये हैं। कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का पूंजी-आधार बढ़ सके। इन बैंकों के कम्प्यूटरीकरण के लिए कर्मचारियों को ट्रेनिंग देने के लिए, वित्तीय सहायता प्रदान की गई है। एकीकरण द्वारा संरचनात्मक सुधार लाये गऐ हैं। एकीकरण के कारण, इन बैंकों के वित्तीय संसाधनों, कर्मचारियों, अनुभव तथा कुशलता में वद्धि हुई है। इस संरचनात्मक सुधारों के कारण, हानि में चलने वाले बैंकों की संख्या में कमी आई है।

Chart 1 : Structure of Agricuture Credit System in India



सूक्ष्म-वित्तीय संस्थान : बैंक, ग्रामीण-वित्त रियायती दरों पर उपलब्ध कराती है। लेकिन छोटे व सीमान्त किसान साधारणतः इस सुविधा का, बहुत कानूनी बारिकियों, तथा तकनीकी कारणों के कारण, लाभ उठाने में असमर्थ रहते हैं। 1975 के बाद से कुछ गैर-सरकारी संस्थान गरीबों को ऋण की वैकल्पिक व्यवस्था कर रहे हैं। बाद में R.B.I. तथा NABARD ने व्यावसायिक बैंकों को NGO के साथ मिलकर गरीबों के लिए स्वयं सहायता समूह बनाने के लिए प्रोत्साहित किया है। R.B.I. ने स्वयं सहायता समूह को दी जाने वाली ऋण को Primary Lending में शामिल कर लिया है।

प्रश्न

→ कृषि वित्त के पक्ष में तर्क दीजिए।

→ कृषि वित्त कितने प्रकार का होता है।

→ कृषि वित्त के संस्थागत तथा गैर-संस्थागत वित्त के मध्य अन्तर को स्पष्ट करें।

→ भारत में कृषि वित्त के संस्थागत जोतो की व्याख्या कीजिए।

कृषि वित्त की प्रवत्ति : भारत में संस्थागत कृषि वित्त की सुविधाओं में आशातीत वद्धि दर्ज की है। कुछ मुख्य प्रवत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

1. संस्थागत वित्त पर बढ़ती निर्भरता : आजादी के पश्चात् एक बड़ी उपलब्धि यह है कि संस्थागत वित्त की पहुँच बढ़ती जा रही है तथा गैर-संस्थागत वित्त की महत्वत्ता में कमी हो रही है। संस्थागत वित्त जिसका 1951 में कुछ ग्रामीण वित्त में हिस्सेदारी 7 प्रतिशत थी, सन् 1991 में बढ़कर 66 प्रतिशत हो गई है। अर्थात् गैर-संस्थागत वित्त की हिस्सेदारी 93 प्रतिशत

से घटकर 31 प्रतिशत रह गयी है। लेकिन 2002 में NSSO सर्वेक्षण के अनुसार, ग्रामीण वित्त में एक नकारात्मक प्रवति देखने को मिल रही है जिसके अनुसार गैर-संस्थात्मक वित्त की भूमिका में वद्धि हुई है जो 38.9 प्रतिशत हो गई है।

Table 1 : Relative Share of Borrowing of Cultivator Hosueholds from Different Sources

(Per cent)

Sources Credit	1951	1961	1971	1981	1991	2002
Non-Institutional	**92.7**	**81.3**	**68.3**	**36.8**	**30.6**	**38.9**
of which **Money Lenders**	69.7	49.2	36.1	36.1	17.5	26.8
Institutional	**7.3**	**18.7**	**31.7**	**63.2**	**66.3**	**61.1**
of which **Cooperatives Societies/Banks**	3.3	2.6	22.0	29.8	23.6	30.2
Commercial Banks	0.9	0.6	2.4	28.8	35.2	26.3
Unspecified	**–**	**–**	**–**	**–**	**3.1**	**–**
Total	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**

Source: All India Debt and Investment Survey and NSSO.

2. संस्थागत वित्त की प्रवत्ति : स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्रामीण व कृषि वित्त में लगातार वद्धि हुई है। 1975-76 कृषि क्षेत्र को 1675 करोड़ रुपये का ऋण दिया गया जो 2003-04 में 86891 रु० था जो 2005-06 में 203297 करोड़ रुपये हो गया। वास्तव में कृषि ऋण में होने वाली वद्धि, कृषि उत्पादन में होने वाली वद्धि से ज्यादा रही है।

इस वद्धि के वावजूद, कृषि वित्त की आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकता है। कुल संस्थागत ऋण में लघुवधि - ऋण की हिस्सेदारी 1975-76 में 70.3 प्रतिशत थी जो 2006-07 में घटकर 58.1 प्रतिशत रह गयी है। यह अभी भी सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है।

Table 2 : Institutional Credit flow to Agricultrue Sector (Rs. Crore)

Agency	1975 -76	1983 -84	1993 -94	2001 -02	2002 -03	2003 -04	2004 -05	2005 -06	2006 -07	2007 -08
Cooperatives	1186	2938	10117	23524	23636	26,875	31231	39404	42480	33070
Regional Rural Bank	2	263	977	4854	6070	7581	12404	15223	20435	15925
Scheduled Commercial Banks	405	1885	5400	33587	39774	52441	81481	125477	140382	88765
Other Agencies	82	185	0	80	80	84	193	382	NA	NA
Total Credit	**1675**	**5244**	**16494**	**62045**	**69560**	**86981**	**125309**	**180486**	**203297**	**137760**

Up to November 2007.

3. विभिन्न ऐजेन्सी द्वारा ऋण : अगर हम विभिन्न श्रोतों द्वारा उपलब्ध कराये गऐ कृषि ऋण की अध्ययन करें तो पायेगे कि 1975-76 में को-ओपरेटिव बैंक द्वारा अधिकतम ऋण प्रदान किया गया जो कुल कृषि ऋण के 71 प्रतिशत के बराबर था। व्यवसायिक बैंक का 24.2 प्रतिशत था ग्रामीण बैंक का 4.9 प्रतिशत योगदान था।

यद्यपि आर्थिक सुधारों की शुरुआत तक को-ओपरेटिव बैंक सबसे महत्त्वपूर्ण घटक बना रहा है। परन्तु व्यवसायिक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ने आशातीत वद्धि दर्ज की है। आर्थिक सुधारों की शुरुआत के पश्चात् व्यवसायिक बैंक सबसे महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में उभरे हैं। 2006-07 में को-ओपरेटिव बैंकों का सम्पूर्ण संस्थागत ऋण में भागीदारी 20-1 प्रतिशत थी जबकि व्यवसायिक बैंकों की हिस्सेदारी 69.1 प्रतिशत थी। यद्यपि को-ओपरेटिव बैंकों द्वारा दिये जाने वाले कुल ऋण में वद्धि हुई है। परन्तु व्यवसायिक बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋण में ज्यादा तेजी से वद्धि हुई है।

यद्यपि, वर्तमान में व्यवसायिक बैंक सबसे बड़े कृषि ऋण प्रदाता है। परन्तु को-ओपरेटिव बैंक की जड़ें ज्यादा गहरी हैं तथा ज्यादा लोगों को ऋण प्रदान करती है। को-ओपरेटिव बैंक के ग्रामीण क्षेत्रों में कुल शाखाएँ व्यवसायिक बैंक व

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की तुलना में दुगुनी हैं तथा कुल खातों की संख्या व्यवसायिक व क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की तुलना में 4 गुनी हैं। क्योंकि को-ओपरेटिव बैंकों की शाखाएँ ज्यादा हैं तथा खातों की संख्या भी ज्यादा है इस कारण ये बैंक लाभकारी नहीं रहे हैं। इसी कारण को-ओपरेटिव बैंक अपनी कुशलता से कम पर काम कर रहे हैं।

आर्थिक सुधारों के पश्चात्, एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि व्यवसायिक बैंकों का कुल कृषि ऋण में भाग लगातार बढ़ा है परन्तु साथ ही साथ छोटे व सीमान्त किसानों को मिलने वाले ऋण में कोई सन्तोषजनक वद्धि नहीं हुई है।

यद्यपि छोटे किसानों के खातों की संख्या में वद्धि हुई है परन्तु अभी भी धनाढ्य किसान को दिये जाने वाले ऋण की मात्रा ज्यादा है।

4. क्षेत्रानुसार ऋण का बटवाँरा : ऋण के बटवाँरे क्षेत्रानुसार विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उत्तर भारत, पश्चिम भारत तथा दक्षिण भारत की भागीदारी लगातार बढ़ी है। कृषि क्षेत्र को मिलने वाले ऋण में दक्षिण-भारत की हिस्सेदारी सर्वाधिक है।

सरकार द्वारा किये गऐ प्रयास : कृषि क्षेत्र को वित्त का प्रवाह बढ़ाने के लिए सरकार ने हाल ही में कुछ विशेष प्रयास किये हैं। 2004-05 में कृषि वित्त प्रवाह को तीन गुना करने की नीति का शुभारम्भ किया गया। बैंक की पहुँच बढ़ाने के लिए, खाता खोलने की प्रक्रिया को सरल कर दिया है। तथा अन्य उपाय निम्न हैं –

(a) राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (NAIS) : 1999-2000 की रबी की फसल से भारत ने NAIS को क्रियान्वयित किया है। राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (NAIS) को क्रियान्वयित करने के पीछे मुख्यतः कारण किसानों को फसल बीमा तथा वित्त सहायता प्रदान करना था। यह बीमा उन्हें कुछ नोटीफायड फसलों के प्राकृतिक आपदाओं, बीमारी आदि के कारण नष्ट होने की स्थिति में प्रदान किया जाना था और किसानों को नई फसल तकनीकी प्रयोग में लाने के लिए प्रात्साहित देने हेतु प्रदान किया जाता था।

नाबार्ड

(i) ग्रामीण अधःसंरचना विकास फंड : R.B.I. ने 1995-96 में 2000 करोड़ रुपये का कोष स्थापित किया। जिसका मुख्य उद्देश्य राज्य सरकारों तथा राज्य की दूसरी संस्थाओं को ग्रामीण अंधसंरचना जैसे ग्रामीण सड़क, ग्रामीण पुल, सिंचाई सुविधा, भुमि संरक्षण, बाढ़ उपाय, पेयजल सुविधा तथा ग्रामीण शिक्षा सुविधाओं आदि का विकास करना था। 1990-96 से लेकर 2007-08 इस RIDF कोष में अब तक सरकार ने कुल 72,000 करोड़ रुपये दिये हैं तथा 2008-09 के बजट में 14,000 करोड़ रुपये की और व्यवस्था की गई है।

(ii) सूक्ष्म-वित्त : परम्पराकारी बैंकिंग व्यवस्था से गरीबों को बहुत ज्यादा फायदा नहीं हुआ है। क्योंकि ये बैंक मुख्यतः उन्हीं को ऋण देते हैं जिनके पास सम्पत्ति होती है। गरीबों के पास गिरवी रखने के लिए सम्पत्ति ही नही होती है। सूक्ष्म वित्त, गरीबों को, जिनके पास कोई सम्पत्ति नही होती है, को ऋण प्रदान करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। गरीबों को ऋण सूक्ष्म-वित्त संस्थाओं द्वारा प्रदान किये जाते हैं। नाबार्ड सूक्ष्म-वित्त संस्थाओं के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

(iii) किसान क्रेडिट कार्ड स्कीम (KCC) : किसानों को लघु-अवधि का ऋण देने के लिए किसान क्रेडिट कार्ड दिया जाता है तथा ऋण सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए एक पासबुक भी दी जाती है। इस स्कीम के तहत ऋण प्रदान करने के लिए नाबार्ड व्यावसायिक बैंक व दूसरी को-ओपरेटिव बैंक को ऋण प्रदान करती है।

(iv) स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्व-रोजगार योजना के अन्तर्गत पुनर्वित्त सुविधा प्रदान कराना।

(v) को-ओपरेटिव विकास कोष : नाबार्ड ने को-ओपरोटिव विकास फण्ड की स्थापना की है जिसका मुख्य उद्देश्य को-ओपरोटिव क्रेडिट सोसाइटी को वित्त उपलब्ध कराना होता है।

ग्रामीण वित्त व्यवस्था में कमजोरियाँ :

(i) मुद्रा-ऋण पर ज्यादा ध्यान देना : ग्रामीण वित्त इकाइयों ने मुद्रा-ऋण पर ज्यादा ध्यान दिया है। यद्यपि यह ऋण एक महत्त्वपूर्ण साधन है परन्तु कृषि के लिए अन्य बातों का भी महत्त्व है।

(ii) समस्याओं की बहुत्ता : ग्रामीण वित्त व्यवस्था बहु-ऐजेन्सी व्यवस्था पर आधारित है। इस बहु-ऐजेन्सी व्यवस्था की एक सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि सभी संस्थाएँ एक जैसा ही ऋण प्रदान कराती हैं। इन संस्थाओं में आपस में समन्वय का अभाव है जिसका पूरी वित्त व्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है।

प्रेरणा की कमी : ग्रामीण वित्त व्यवस्था में प्रेरणा की कमी देखने की मिलती है। को-ओपरेटिव बैंक की कमियों को ध्यान में रखकर व्यवसायिक बैंक को ग्रामीण वित्त व्यवस्था में अहम भूमिका की उम्मीद की गई थी लेकिन व्यवसायिक बैंक के पास कृषि वित्त के लिए आवश्यक कृषि कुशलता की कमी होती है। इन बैंकों के पास वित्तीय साधनों की कमी नहीं है लेकिन इनके पास कृषि वित्त से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी नहीं होती है। इसलिए किसानों को ऋण नहीं मिल पाता है।

वित्तीय अलगांव : यद्यपि संस्थागत वित्त व्यवस्था का बहुत बड़ा जाल है फिर भी ये गैर-संस्थागत वित्त व्यवस्था तथा अनौपचारिक ग्रामीण वित्त बाजार को भेदने में असमर्थ रही है। ग्रामीण वित्त व्यवस्था में, गैर-संस्थागत वित्त की अभी भी एक बहुत बड़ी भूमिका है।

उच्च ब्याज दर : ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं द्वारा किसानों ने ऊँचा ब्याज पर वसूला जाता है। छोटे व सीमान्त किसान, तथा ऐसे सभी व्यक्ति जिनकी आय बहुत कम है, उच्च ब्याज दर चुकाने में असमर्थ होते हैं।

प्रक्रिया सम्बन्धी विलम्ब : ऋण प्रदान करने की प्रक्रिया बहुत लम्बी होती है तथा प्रक्रिया सम्बन्धी विलम्ब होता है। इसलिए किसान संस्थागत वित्त व्यवस्था से दूर रहते हैं तथा वे गैर-संस्थागत वित्त पर ज्यादा विश्वास करते हैं।

7. ग्रामीण वित्त व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि ज्यादातर ऋण समय पर वापस नहीं होता है। इसलिए बैंक में ग्रामीण क्षेत्र में ऋण प्रदान करने, कठिनाई महसूस करता हैं। यह बहुत ही दयनीय स्थिति है कि व्यक्ति अपने ऋण को वापस नहीं करते हैं वे मुख्यतः बड़े किसान हैं। राजनैतिक हस्तक्षेप भी बैंकिंग व्यवस्था को प्रभावित करते है।

संस्थागत ग्रामीण वित्त व्यवस्था को सुधारने के लिए सुझाव

(i) ऋणों की पुनर्प्राप्ति के लिए वित्तीय अनुशासन : राजनीतिक दलों के मध्य इस बात पर एक आम सहमति होनी चाहिए कि ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं का राजनीतिकरण नहीं किया जाएगा। ऋण मांफी तथा ऋण वापस न करने जैसी मांग भी राजनीतिक दलों द्वारा नहीं उठायी जाएगी। यद्यपि ग्रामीण वित्त की समस्याओं को ध्यान के रखते हुऐ, ऋण की पुनर्प्राप्ति की प्रक्रिया को सरल बनाया जाना चाहिए।

(ii) को-ओपरेटिव क्रेडिट व्यवस्था को पुनर्जीवित करना : को-ओपरेटिव वित्त व्यवस्था की पहुँच बढ़ाने के लिए, इसे मजबूत किया जाना चाहिए।

इस संस्थाओं के पूंजी आधार को बढ़ाया जाना चाहिए। इन संस्थाओं की कुशलता बढ़ाने, मानवीय संसाधनों का विकास करने के लिए, इनकी पुनर्संरचना की जानी चाहिए।

(iii) ज्यादा बेहतर भौतिक, सामाजिक व आर्थिक अंधःसंरचना : ग्रामीण विकास को बढ़ाने के लिए, एक दीर्धकालीन नीति बनायी जानी चाहिए जिसके अन्तर्गत अधःसंरचना को सुधारने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसके लिए सामाजिक अधःसंरचना जैसे शिक्षा, पेयजल, स्वास्थ सुविधाओं पर ज्यादा खर्चा किया जाना चाहिए। साथ ही साथ भौतिक अधःसंरचना जैसे सड़क ऊर्जा तथा आर्थिक अधःसंरचना जैसे– सिंचाई तथा आधुनिक कृषि तकनीकी आदि को भी मजबूत किया जाना चाहिए। ये सभी उपाय गरीबों को ऋण को वापस करने की सामर्थ्य को बढ़ाने में सहायक होंगे तथा ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं को ज्यादा अवसर प्रदान करेंगे।

(iv) वित्त के साथ-साथ परामर्श : ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं को वित्त प्रदान करने के साथ-साथ किसानों को सुझाव भी देने चाहिए। यह परामर्श विशेषज्ञों द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए।

(v) ऋण को समूह में प्रदान करना : यदि ऋण किसानों के समूह को दिया जाय तो ऋण की वापसी सम्भावना ज्यादा होती है। क्योंकि एक ऋण वापस करने के लिए दबाव रहता है। ग्रामीण शिक्षित युवकों या N.G.O. को किसानों को समूह में संगठित करने के लिए संगठित किया जा सकता है।

(vi) सूक्ष्म वित्त संस्थाओ का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग किया जाना चाहिए। स्वयं सहायता समूह (SHGs), N.G.O. आदि का ग्रामीण वित्त की प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाना चाहिए। क्योंकि सूक्षम वित्तीय संस्थाओं को ग्रामीण समस्याओं की ज्यादा जानकारी होती है। अतः ये वित्त व्यवस्था की गुणवत्ता बढ़ानें में सहायक हो सकते हैं।

(vii) तकनीकी सुधार : वित्त सुविधाओं को तकनीकी रूप से मजबूत किया जाना चाहिए। इसके लिए सभी वित्तीय संस्थाओं का कम्प्यूटरीकरण किया जाना चाहिए। यह उपभोक्ताओं का बेहतर ढ़ंग से संयोजन में सहायक होगा तथा साथ ही साथ यह वित्तीय संस्थाओं की संचालन लागत भी कम करने में सहायक होगा।

(viii) ग्रामीण गरीबों को सूचना प्रदान कराना : ग्रामीण गरीबों को वित्त तथा सरकारी योजनाओं की जानकारी नहीं होती है। यदि उन्हें यह सब सूचना प्रदान करायी जाए तो ग्रामीण वित्त सुविधाओं का बेहतर ढ़ंग से प्रयोग कर सकते हैं।

पाठ 6

भारत में कृषि मजदूर

इस अध्याय को पढ़ने से आप निम्नलिखित समझ सकेंगे

- भारत में कृषि मजदूर का अर्थ व महत्त्व
- भारत में कृषि मजदूरों की संख्या तथा संख्या बढ़ने का कारण
- कृषि मजदूरों के लिए सरकार द्वारा किए गये उपाय

प्रस्तावना :

भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक विशिष्ट पहलू, फसल उत्पादन में कृषि मजदूरों का उपस्थिति होना है। कृषि मजदूरों के सन्दर्भ में बेरोजगारी, अविकास तथा अतिरिक्त मजदूरी की समस्या देखने को मिलती है। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि मजदूरों की दशा सबसे दयनीय है। इन मजदूरों की आय बहुत कम है तथा इन्हें रोजगार प्राप्त करने में भी समस्या होती है। क्योंकि इन मजदूरों के पास ट्रेनिंग के अभाव में अतिरिक्त कुशलता नहीं होने के कारण, किसी दूसरी जगह रोजगार पाने की भी समस्या होती है।

कृषि मजदूर की परिभाषा : ऐसे किसी मजदूर को जो पूर्ण या आंशिक रूप से पूरी या वर्ष के कुछ दिनों में कृषि क्षेत्र में मुख्य या सहायककर्ता के रूप में, मजदूरी पर कार्य करता है, उसे कृषि मजदूर कहा जाता है। कृषि मजदूर का भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता है, उत्पादन पर भी कोई अधिकार नहीं होता है। कृषि मजदूर उत्पादन की प्रक्रिया में सम्मिलित खतरे से भी दूर रहता है अर्थात कृषि उत्पादन में निहित खतरे में कृषि मजदूर की कोई भूमिका नहीं होती है। कृषि मजदूर की परिभाषा में वे मजदूर भी शामिल हैं जो ऐसी जगह रोजगारकृत हैं जो कृषि पर आधारित हैं जैसे– पशुपालन, डेयरी, मुर्गीपालन आदि। कृषि मजदूरी जाँच समिति के अनुसार कोई भी व्यक्ति जिसकी आय का मुख्य साधन या जो अपनी आय कृषि फार्म पर काम करके मजदूरी के रूप में कमाता है, कृषि मजदूर कहलाता है।

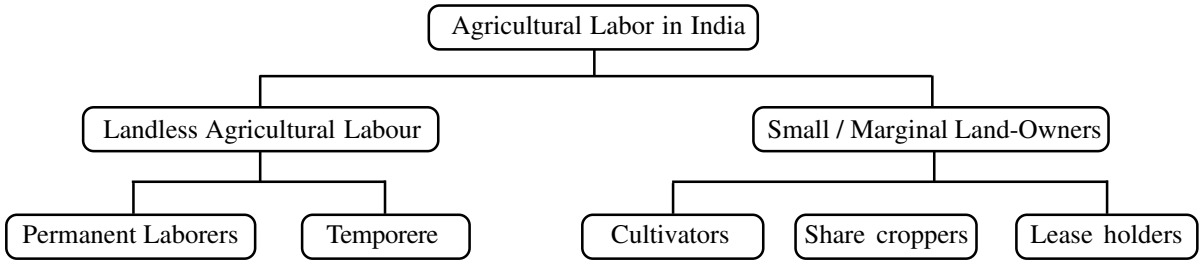
कृषि मजदूर को मुख्यत : दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. भूमिहीन कृषि मजदूर : वो मजदूर जिनके पास भूमि नहीं होती है, को भूमिहीन कृषि मजदूर कहते हैं। भूमि कृषि मजदूरों को पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (i) स्थायी भूमिहीन कृषि मजदूर (ii) अस्थायी भूमिहीन कृषि मजदूर

स्थायी भूमिहीन कृषि मजदूर किसी अनुबंध के तहत कृषि फार्म पर मजदूरी करता है। मजदूरी किसी परम्परा के अनुसार निश्चित की जाती है।

अस्थायी भूमिहीन कृषि मजदूर वो मजदूर हैं जो कृषि में केवल कुछ समय के लिए कार्य करते हैं। रोजगार अस्थायी है तथा मजदूरी बाजार में प्रचलित दरों के अनुसार रहती है। मजदूर किसी जमींदार के साथ जुड़े हुए नहीं होते हैं।

Chart 1 : Agriculture Labour in India



2. छोटे व सीमान्त भूमिधारक : ये वे मजदूर हैं जो छोटे व सीमान्त किसान हैं। क्योंकि इनके पास ज्यादा भूमि नहीं होती है। अतः ये वर्ष के कुछ समय दूसरों के कृषि फार्म पर काम करके अपनी जीविका कमाते हैं। इन्हें पुनः तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

(i) जुताईदार : ये छोटे किसान है जिनके पास निजी भूमि होती है लेकिन यह भूमि बहुत कम होती है। अतः उन्हें दूसरों की भूमि पर कार्य करके अपनी आय का एक भाग कमाना पड़ता है।

(ii) बँटाईदार : बँटाईदार वो होते हैं जो फसल में से बटवारा करते हैं। ये फसल में हिस्सेदारी इसलिए प्राप्त करते कि उन्होंने मजदूर के रूप में काम किया होता है।

(iii) पट्टेदार : ये वे होते हैं जो भूमि को पट्टे पर लेते हैं तथा उन पर मजदूरी करते हैं।

कृषि मजदूरों की विशेषताऐं : भारत में कृषि मजदूरों की मुख्य विशेषताऐं निम्नलिखित हैं।

(i) कृषि मजदूरों का बिखरा हुआ होना : भारत में कृषि मजदूर बिखरे हुऐ हैं। क्योंकि भारत एक बहुत बड़ा देश है इसलिए कृषि मजदूर भी बिखरे हुये हैं। अतः इन्हें संगठित नहीं किया जा सकता है।

(ii) अकुशलता व ट्रेनिंग का आभाव : कृषि मजदूर, विशेषकर छोटे गावों में, अकुशल है तथा कम मजदूरी पर काम कर रहा है। उनमें से अधिकतर परम्परावादी होते हैं। उनमें परिवर्तन के लिए इच्छा शक्ति नाम-मात्र को ही है। क्योंकि रोजगार के लिए अन्य साधन नहीं है, इसलिए कृषि मजदूरों को फार्म में मजदूरी के अलावा जमींदारों के घर में भी मजदूरी करनी पड़ती है।

(iii) असंगठित : कृषि मजदूर, औद्योगिक मजदूरों की तरह संगठित नही है। ये मजदूर अशिक्षित व अज्ञानी है। ये मजदूर पूरे देश में बिखरे हुऐ, गावों में रहते हैं। इनका अपना कोई संगठन नहीं है। क्योंकि ये संगठित नहीं है। इसलिए बेहतर मजदूरी दर के लिए, वे जमींदारों से मोलभाव नहीं कर पाते हैं।

(iv) कम सामाजिक हैसियत : ज्यादातर कृषि मजदूर, समाज के दलित वर्ग से हैं। देश के कुछ भागों में कृषि मजदूरों पलायनकारी हैं। ये मजदूर रोजगार की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं जिससे इनकी पारिवारिक जिन्दगी में उथल-पुथल होती है। इसका प्रभाव बच्चों की शिक्षा पर भी पड़ता है।

(v) मजदूरों की अधिकता : भारत में कृषि मजदूरों की अधिकता है। सिर्फ बुवाई तथा फसल उठाने के समय ही सभी को रोजगार मिलता है। अन्य ज्यादातर मजदूर को रोजगार नहीं मिलता है।

(vi) मोलभाव की कम शक्ति : ऊपर बताये गऐ कारकों की वजह से, भारत में कृषि मजदूरों की मोलभाव करने की शक्ति कम है। वास्तव में, उनमें से ज्यादातर, जमींदारों, द्वारा शोषित है। भारत में, कृषि मजदूर सबसे ज्यादा शोषित वर्ग है।

भारत में कृषि मजदूरों का आकारः 1981 की गणना के अनुसार, कुल मजदूरों का 22.7% कृषि मजदूर थे जो 1991 में बढ़कर 26.1 प्रतिशत हो गये।

1951 में कृषि मजदूरों की संख्या 2.73 करोड़ थी जो 2001 में बढ़कर 10.68 करोड़ हो गयी है।

Table 1 : Population and Agricultural Workers **(In Millions)**

Year	Coultivators	Agricultural Labourers	Total
1951	69.9 (71.9)	27.3 (28.1)	97.2 (100.0)
1961	99.6 (76.0)	31.5 (24.0)	131.1 (100.0)
1971	78.2 (62.2)	47.5 (37.5)	125.7 (100.0)
1981	92.5 (62.5)	55.5 (37.5)	148.0 (100.0)
1991	110.7 (59.7)	74.6 (40.3)	185.3 (100.0)
2001	127.3 (54.4)	106.8 (45.6)	234.1 (100.0)

Source: Registrar General of India, New delhi.

Figures within parentheses are precentages to total Agricultural Work Force.

भारत में कृषि मजदूरों की संख्या में वद्धि का कारणः भारत में कृषि मजदूरों की संख्या में वद्धि के बहुत से कारण मौजूद है। उनमें से मुख्यतः निम्न हैं–

(i) ग्रामीण जनसंख्या में वद्धि : भारत में जनसंख्या में बहुत तेजी से वद्धि हुई जिसके कारण भूमि का लगातार बंटवारा हुआ है और ज्यादातर किसान छोटे व सीमान्त जोतों के मालिक रह गये हैं। ये छोटी व सीमान्त जोतें, जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए ये छोटे व सीमान्त किसान, अतिरिक्त आय के लिए कृषि मजदूरों के रूप में काम करते हैं।

(ii) कुटीर व हस्त-उद्योगों का प्रभाव : ग्रामीण उद्योग, वहत उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ नहीं है इसलिए ग्रामीण उद्योग धीरे–धीरे खत्म हो रहे हैं। इसलिए अभी तक जो व्यक्ति कुटीर व हस्तशिल्प उद्योगों में रोजगारकृत थे, धीरे-धीरे कृषि मजदूरों के रूप में परिवर्तित हो रहे हैं। कुटीर व लघु-उद्योगों के अभाव में, रोजगार के वैकल्पिक साधनों का अभाव होता जा रहा है। शनैः शनैः कृषि मजदूरों की संख्या बढ़ रही है।

(iii) छोटे किसानों का भूमि से बेदखलीः भूमि सुधारों में स्व-कृषि हेतु बेदखली तथा स्वैच्छिक समर्पण जैसे पहलुओं के चलते, बड़े स्तर पर छोटे किसानों का भूमि से बेदखली की गई। जिसकी वजह से कृषि मजदूरों की संख्या में भी वद्धि हुई है।

(iv) जोतों का अनार्थिक होनाः कृषि जोतों में विभिन्नता अर्थात आकार का छोटा-बड़ा होना भी इस समस्या की मुख्य जननी रही है जिसे दूर करने के प्रयास करने चाहिये।

(v) ग्रामीण कर्ज में वद्धि : ग्रामीण अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा भाग कर्ज में डूबा हुआ है। कर्ज को वापस करने के लिए, गरीब किसान अपनी भूमि बेच देते हैं तथा दूसरों के यहाँ मजदूरी करते हैं।

(iv) संयुक्त परिवार व्यवस्था का टूट जाना : संयुक्त परिवार व्यवस्था के चलते जो आर्थिक सहायता उपलब्ध रहती थी वो अब संयुक्त परिवार व्यवस्था के टूट जाने के कारण, ऋण उपलब्ध नहीं है। अतः आर्थिक सुरक्षा की तलाश में, कुछ लोग कृषि मजदूरों के रूप में काम करते हैं।

सरकारी उपाय : सरकार ने कृषि मजदूरों की समस्याओं की ओर ध्यान दिया है तथा उनकी स्थिति में सुधार के लिए कुछ उपाय किये हैं। ये निम्नलिखित हैं –

(i) कानूनी उपाय : न्यूनतम मजदूरी एक्ट 1948 के द्वारा केन्द्रीय सरकार ने मजदूरों के न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की है। उसके बाद वक्षारोपण मजदूरी एक्ट 1951 के द्वारा भी सरकार ने मजदूरों को कुछ आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने की भी व्यवस्था की है। कुछ दूसरे मजदूर एक्ट का भी मजदूरों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भी प्रभाव पड़ा है।

(ii) बंधुआ मजदूरी की समाप्ति : 1975 के बाद बंधुआ मजदूर की संकल्पना को ही समाप्त कर दिया गया है। बंधुआ मजदूर व्यवस्था (निवारण) एक्ट 1975 द्वारा, प्रत्येक बंधुआ मजदूर को मुक्त कर दिया गया तथा उसे बंधुआ मजदूरी न करने के लिए स्वतंत्र कर दिया गया। पूर्व-बंधुआ मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिए भी सरकार ने कुछ प्रयास किये हैं।

(iii) भुमिहीन मजदूरों को भूमि प्रदान करनाः भूमि सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी गयी। जिसकी वजह से अतिरिक्त भूमि प्राप्त की गयी तथा इस अतिरिक्त भूमि को भूमिहीन मजदूरों में वितरित किया गया है।

(iv) विशेष रोजगार कार्यक्रम : सरकार ने सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए विशेष रोजगार कार्यक्रम चलाये हैं। विशेष रोजगार कार्यक्रम भूमिहीन मजदूरों के लिए वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था करते हैं।

(v) कल्याणकारी कार्यक्रम : गरीबों के लिए घर उपलब्ध करना, ग्रामीण गरीबों के लिए प्राईमरी शिक्षा की व्यवस्था करना, ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा उपलब्ध कराना, पेयजल की व्यवस्था करना आदि कल्याणकारी कार्यक्रम सरकार ने चला रखे हैं। ये सब कृषि मजदूरों की दशा सुधारने में महत्त्वपूर्ण साबित हो रहे हैं।

कृषि मजदूरों की स्थिति सुधार करने के लिए सुझावः कृषि मजदूरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं –

(i) कानूनों का बेहतर तरीके से क्रियान्वयन : मजदूरों के लिए बनाऐ गऐ कानूनों का बेहतर तरीके से क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। विशेषकर न्यूनतम मजदूरी एक्ट का पालन किया जाना चाहिये। यह कृषि मजदूरों की दशा सुधारने में सहयोगी सिद्ध होगी।

(ii) मोल-भाव करने की सामर्थ्य में सुधार : कृषि मजदूरों को संगठित किया जाना चाहिए। संगठित मजदूर अच्छी मजदूरी तथा अच्छी कार्यकारी दशा के लिए बेहतर ढंग से मोल-भाव कर सकते हैं।

(iii) कृषि मजदूरों का पुनर्स्थापन : छोटे व सीमान्त किसानों के लिए भूमि वितरण की व्यवस्था को मजबूत किया जाना चाहिए। यह सब उनकी आय तथा सामाजिक स्तर में वद्धि करेगा।

(iv) वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था करना : ग्रामीण मजदूर ट्रेनिंग व कुशलता के अभाव में कृषि क्षेत्र से बाहर रोजगार पाने में असमर्थ होते हैं। अतः उनके लिए ट्रेनिंग की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा उन्हें कुशल बनाया जाना चाहिए। क्योंकि कृषि में रोजगार वर्ष के एक बहुत छोटे समय के लिए होता है। इसलिए ज्यादातर कृषि मजदूर रोजगार पाने में असमर्थ रहता है। इसके लिए सरकार द्वारा रोजगार कार्यक्रम वहद स्तर पर चलाया जाना चाहिए। गैर -कृषि उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए, कृषि को श्रम गहन बनाया जाना चाहिए, इसके लिए कृषि का विविधीकरण होना चाहिए।

(v) कृषि क्षेत्र में सुधार : कृषि क्षेत्र का विकास किया जाना चाहिए। ग्रामीण अधःसंरचना का विकास किया जाना चाहिए।

(vi) वित्त व्यवस्था : कम ब्याज दर पर उचित समय पर वित्त की व्यवस्था होनी चाहिए। कृषि क्षेत्र में उचित समय पर वित्त उपलब्ध नहीं होता है, जिसके कारण कृषि उत्पादकता कम बनी रहती है।

(vii) सहकारी खेती : क्योंकि भारत में छोटे व सीमान्त किसानों की संख्या ज्यादा है। उनकी जोत का आकार भी कम है। अतः आधुनिक तकनीकी का प्रयोग नहीं होता है। आधुनिक तकनीकी के प्रयोग के अभाव में उत्पादकता कम रहती है। अतः इन छोटी जोतों को एक जगह एकत्रित करके सहकारी खेती की जानी चाहिए। सहकारी रूप से होनी वाली कृषि पर कम ब्याज दर ऋण आसानी से प्राप्त हो सकता है।

(viii) सरकारी निवेश में वद्धि : ग्रामीण क्षेत्रों के सीधा व्यवस्था, स्वास्थ्य सुविधाएँ, पेयजल सुविधा आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे कृषि क्षेत्र में उत्पादकता में वद्धि होगी। ग्रामीण गरीबों को आर्थिक सहायता प्रदान किया जाना चाहिए। ये व्यवस्था करने के लिए सरकारी निवेश की आवश्यकता होती है। कृषि में निजी व सरकारी निवेश सम्बन्धित होते हैं। सरकारी निवेश बढ़ने पर निजी निवेश में वद्धि होती है। अतः कृषि क्षेत्र में सरकारी निवेश बढ़ाया जाना चाहिए।